शकुन्तला-नाटक.

(गद्यपद्यात्मक.

This Book Belong to
Pandit

दिव दीवन रावन नासा मह्दा

SHAKUNTALA.

OR

THE LOST RING

A SANSKRIT DRAMA OF KALIDAS
TRANSLATED INTO HINDI
PROSE AND VERSE
WITH NOTES

BY

PANDIT JWALAPRASAD MISHRA

OF

MORADABAD

PUBLISHED BY

KHEMRAJ SHRIKRISHNADAS,

Printed at the Shri Venkateshwar Steam Press.

BOMBAY.

1903

॥ श्रीः ॥

महाकवि श्रीकालिदासकृत—

शाकुन्तल नाटक।

अनेकग्रंथोंकेनिर्माता तथा टीकाकार मुरादाबादस्थ
पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रद्वारा,

गद्यपद्यमें अनुवादित.

वही
खेमराज श्रीकृष्णदासने
बंबई
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयमें
मुद्रितकर प्रकाशित किया।

पौष संवत् १९५९, शके १८२४.

भूमिका.

जो अपने गुणोंके कारण समस्त संसारमें एकमात्र महाकवि कहाता है उस कविकी सबसे ऊंची फहरानेवाली "**शाकुन्तल--नाटक**" रूप ध्वजाको कौन नहीं जानता है, जिस नाटकके अनुवाद देश देशान्तर की अनेक भाषाओंमें यथातथ्य न होकरभी इस ग्रंथकी सर्वोत्तमताका परिचय देरहे हैं,इसमें कोईभी सन्देह नहीं कि "**शाकुन्तल नाटक**" के समान सर्वजनप्रिय दूसरा नाटक इस भूमण्डलमें नहीं है, इसमें जो स्थान जो भाव रसनिरूपण नाटकके अलंकारादि लिखेगये हैं, वह ऐसे हैं कि मन लगाकर पाठ करतेही वह सब भाव और पात्र नेत्रोंके सामने नृत्य करतेसे दिखाई देने लगते हैं, इसके विषयमें विशेष लिखना पिष्टपेषणमात्र है, कारण कि, सभी ज्ञाताओंने इसके विषयमें थोडा बहुत कथन कियाही है और अबभी इसके विषयमें छोटे बडे प्रबन्ध निकलतेही रहते हैं, इसकारण इसके समालोचक विभागको छोड़कर इसमें इतनाही कहना बहुत समझते हैं कि महाकविने, इसमें वह भाव रक्खे हैं, जो प्रेमीजनोंके हृदयमें घनिष्ठप्रेमकी स्थिति होनेपर हुआ करते हैं, और उसके भावोंको हृदयसे मिलाकर पाठ करनेसे रसज्ञ सज्जनोंको इसका परिचय भलीभाँतिसे होसकता है ।

इसका यथार्थ रस तो संस्कृतग्रंथके अवलोकनसेही होसकता है परन्तु जो संस्कृतसे अनभिज्ञ हैं उनको अपनी देशभाषाके अनुवादके सिवाय इसके जाननेका और उपाय क्या है, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि, अपने देशकी हिन्दीभाषाको छोड़कर अन्यदेशकी भाषाओंमें संस्कृतका अनुवाद वैसा उत्तम नहीं होता, कारण कि यह भाषा संस्कृतसेही बिगडकर बनी है, इसकारण इसमें उन शब्दोंकी सामग्री विद्यमान है, दूसरी भाषाओंमें नहीं है, इसीसे हिन्दी अनुवादही और अनुवादोंसे उत्तम होसकता है जिस भारतवर्षमें अच्छेसे अच्छे विज्ञ प्रगट होते रहते हैं

और हैं तथा होंगे वहां "शाकुन्तल" हिन्दी अनुवाद हुए विना कैसे रह सकती है, कई महानुभावोंके किये अनुवाद हिन्दीके भंडारकी शोभा बढा रहे हैं, और प्रशंसनीय हैं, फिर दूसरे अनुवादकी आवश्यकता क्याहै ? परन्तु ऐसा कौन है कि इस महाकवि कालिदासके प्रेमसरोवरमें स्नान करके शुष्कशरीरसे बाहर निकल आवे, और उसके वस्त्र तथा सर्वांगसे नेह नीर न चुचावै, "सबजानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे विन रहा न कोई," इसको पढकर कईवार मनमें आया कि एक इसका हिन्दीअनुवाद ऐसाभी कियाजाय कि,जो नाटकके खेलकेभी उपयोगीहो और संस्कृतका भाषावालोंकेभी उपयोगीहो जिससे देखकर असली ग्रंथका मिलानभी होजा-य, परन्तु फिरभी मनमें संकोच होता था, यद्यपि इसविषयमें कित-ने एक मित्रोंकी प्रेरणाभी हुई पर तोभी इसकार्यका दृढसंकल्प न हुआ उसी अवसरमें हमारे परममान्य जगद्विख्यात हिन्दीभाषाके परमस-हायक "श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यंत्रालयाध्यक्ष **सेठजी श्रीयुत खेमराज श्रीकृष्णदासजी** महोदयने बहुत अनुरोध किया कि अपने यंत्रालयके निमित्त "शाकुन्तल नाटक" का गद्यपद्य हिन्दी अनुवाद करना चाहिये, इस अनुरोधको सर्वथा अनिवार्य जानकर मैंने इसग्रंथको भाषामें अनुवादरूपसे लिखना प्रारंभ किया, और जो स्थल पद्यके हैं उनको पद्यमें और जो मूलमें गद्य है वहां भाषा गद्यही रक्खी है, और जहां कहीं ऐसा* फूल बनाहुआ हो उस वाक्यको मूलका अनुवाद न जानना वह अधिक जानना पर ऐसा कहींहि हुआ है ।

पद्यका अनुवाद पद्यमें करना और उसका सम्पूर्ण भाव उसमें प्राप्त-करना कोई सहजबात नहीं है, इसीसे थोडे अक्षरोंमें वह भाव भरना कठि-नाईका कारण होजाता है, यद्यपि इसमें सर्वथा कृतकार्य होना कठिन है तथापि यथासंभव किसी श्लोकका भाव नहीं जाने दिया है, और निज रचनाके शब्दोंको बहुत न्यून अवकाश दिया है, शेष गद्य रचना सर्वत्र-ही मूलका अक्षरार्थ है इसके पाठसे भाषा और संस्कृत दोनोंप्रकारके ज्ञाताओंको लाभ हो सकता है और यदि इसका दृश्य दिखायाजाय तो यह उसकेभी उपयोगी हो सकता है, इसीकारण इसमें भिन्न २ भाँतिके

राग गानेयोग्य संयुक्त किये हैं, और मनुष्योंकी रुचिके अनुसार व्रजभाषा, पूर्वी और इस देशकी भाषामेंभी पद्यरचना की है। और वह प्रायः ऐसी शैलीपर लिखे हैं जिनका इससमय प्रचार है।

इसके अनुवादमें कलकत्ता बम्बई आदि स्थानोंकी मुद्रित तथा एक दो हस्तलिखित पुस्तकोंकोभी मिलाया, परन्तु सबमें बम्बईकी छपी पुस्तकाहीं पाठ अधिक शुद्ध और उपयोगी विदित हुआ इससे उसीके अनुसार यह भाषामें लिखागया है।

इसकी भाषासे हिन्दीरसिक बहुत प्रसन्न होंगे यह कहना तो अत्यन्तही अनुचित है, पर हां, सज्जनोंको यह अरुचिकारकभी न होगी कारण कि, वे दूसरेके गुणोंकेही ग्रहण करनेवाले होते हैं, शेषमें तो "जे परभणित सुनत हरषाहीं, ते वर पुरुष बहुत जग नाहीं" इसमें इतनाही कहना बहुत है कि, भला है या बुरा है जैसा है प्यारे तुम्हारा है।

हिन्दीके प्रेमी उत्साहवर्द्धक "**भारतमित्र**" के एडीटर बाबू बालमुकुन्दगुप्त, कलकत्ता, बाबू उदितनारायणलाल वकील गाजीपुर, तथा अन्य महाशय और हमारे नगरके कुमर बनारसीदासजी एम, ए. पण्डित बलदेवप्रसादमिश्र, कन्हैयालाल मिश्र, कन्हैयालाल तंत्रवैद्य, सेठ कुन्दनलाल, पंडित बाबूराम, बाबू बुद्धासिंहजी आदिभी धन्यवादके योग्य हैं जो हिन्दी अनुवादके ग्रंथोंके प्रचारार्थ अनेक प्रकारसे यत्न करते रहते हैं।

पाठक महाशयोंसे प्रार्थना है कि, यदि इस ग्रंथमें कहीं अशुद्धि पावैं तो अपनी उदारतासे क्षमा करैं कारण कि, मनुष्यके स्वभावमें विशेषकर भूल है।

दोहा--"रसिकनके हित ग्रंथ यह, मैं कीन्हो अनुवाद।
पढिये सुनिये प्रेमसे, पइये नित अहलाद ॥"

सज्जनोंका अनुगृहीत--**ज्वालाप्रसाद मिश्र,**

(दिनदारपुरा)--**मुरादाबाद.**

शकुन्तलाकी संक्षेप कथा ।

१ अंक–हस्तिनापुरका राजा **दुष्यन्त** आखेट करताहुआ कण्वऋषिके तपोवनमें पहुंचा यह आश्रम मालिनीनदीके तटपर था वहां मेनकागर्भसम्भूत **शकुन्तला**को देखकर मोहित होगया, और सखियोंके मुखसे उसे विश्वामित्रके वीर्यसे उत्पन्नहुई क्षत्रिया जान बडा प्रसन्न हुआ, और वहीं परस्पर दोनोंके मनमें प्रीति उत्पन्न हुई पीछे सेनाके लोगोंको देख वनके हाथीके बिगडनेसे **शकुन्तला** अपनी सखियों सहित कुटीमें चलीगई राजानेभी आश्रमके निकटही डेरा किया ।

२ अंक–अपने डेरेपर राजाने अपने मित्र **माढव्यसे शकुन्तला**का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा, और फिर आश्रममें जानेका मिस पूछा कि इसी समय कुछ तपस्वियोंने आकर कहा महाराज ! आप यहां कुछदिन रहकर आश्रमकी रक्षा कीजिये, कारण कि, जब हम यज्ञ करते हैं तो राक्षस आनकर विघ्न डालते हैं राजाने इस बातको सहर्ष स्वीकार किया, कारण कि उसको **शकुन्तला**के समीप जानेका मिस मिलगया ।

३ अंक–**शकुन्तला**के निमित्त व्याकुल हो **राजा** उसे वृक्षोंमें खोजने लगा, तब उसको एक चट्टानपर लेटीहुई विरहतापसे तापित **शकुन्तला** दिखाई दी, दोनों सखियें उससे दुःख पूछ रही थीं, **राजा** पेड़की आडसे सब सुनने लगा सखियोंने **शकुन्तला**से एक प्रेमपत्र लिखवाया, जब वह पत्र **शकुन्तला** बांचने लगी तभी राजाने प्रगट हो अपना वृत्तान्त कहा, और वहीं दोनोंका गंधर्वव्याह हुआ, सखी बहानाकर वहांसे चली गई, पीछे गौतमी शकुन्तलाको देखने आई राजा पेडोंकी आड़में छिपगये, और **शकुन्तला** गौतमीके साथ अपनी कुटीको गई चलते समय राजा अपनी **अँगूठी** देकर हस्तिनापुरको सिधारे और कहदिया कि, आजसे तीसरे दिन कोई तुमको लिवाने आवेगा ।

४ अंक–(का विष्कम्भक) राजाके वियोगमें **शकुन्तला** बड़ी व्याकुल थी, उसी समय महर्षि **दुर्वासा** आगये, और **शकुन्तला**से आदर न पाकर बोले कि, जिसके ध्यानमें तू ऐसी मग्न है, वह तुझे भूलजायगा, पीछे **शकुन्तला**की सखीके मनानेसे कहा कि अपनी **अँगूठी** देखकर उसे स्मरण हो जायगा ।

४ अंक--सोमतीर्थसे लौटकर कण्वऋषिने **शकुन्तलाको** गर्भवती देखकर सब वृत्तान्त जान अच्छी शिक्षा देकर गौतमी और दो मिश्रोंके सहित उसको राजाके यहां भेजदिया, चलते समय सखियोंने कहदिया कि, यदि राजा तुझे तुरन्त न पहचानले तो उसे यह अँगूठी दिखादेना।

५ अंक--जिससमय **शकुन्तला** राजाके पास पहुंची और तपस्वियोंने उसे राजाकी विवाहिता बताया तब राजा शापवश उसको न पहँचान सका, उस समय राजाको सुधि दिवानेको शकुन्तला **अगूठी** दिखाने लगी (जो वह आचमन करते समय शुक्रताल्म गिरपडी थी) पर हाथमें न देख लज्जित हुई और जब राजाने उसे स्वीकार न किया तब पुरोहितनें कहा जबतक इसके बालक हो तबतक मेरे यहां रहै यदि उस बालकके लक्षण चक्रवर्तियोंकेसे हों तो आपके रनवासमें रहैगी, अन्यथा अपने पिताके घर जायगी कण्वके चेले अपने आश्रमको गये और **शकुन्तला** पुरोहितके पीछे २ चली, कुछ दूर जानेपरही एक अप्सरा उसको उडाकर लेगई।

६ अंक-(का प्रवेशक)जहां **शकुन्तलाके** हाथसे अंगूठी गिरीथी वहां एक धीमरने मछली पकड़ी, और उसका पेट चीरा तो उसमेंसे वह अंगूठी निकली उसपर राजाका नाम खुदा था, वह उसे बेचने हस्तिनापुर गया कि कुतवालने राजाकी अंगूठी देख उसे चोर जानकर पकड़ा, और मुदरीको राजाके पास लेगया, उसे देखतेही दुर्वासाका शाप मिटा और राजाको **शकुन्तलाकी** सुध आगई, धीमरको पुरस्कार देकर छाड़ादया।

६ अंक-**शकुन्तलाकी** सुध आतेही राजा बड़े पछतावेमें पड़ा और वसन्तोत्सवको वर्जकर मंत्रीपर राजकाज सौंप उपवनमें निवास करनेलगा, **सानुमती** अप्सराने यह सब वृत्तान्त देखकर शकुन्तलासे कहा एक दिन इन्द्रका सारथि **मातलि** रथ लेकर आया और राजासे कहा दानवोंसे युद्धकरनेको इन्द्रने तुम्हे बुलाया है, राजा उस रथपर चढ दानवोंसे युद्ध करने गया।

७ अंक—जब दानवोंको जीत इन्द्रसे विदा हो राजा अपने नगरको चला तब मार्गमें कश्यपऋषिके आश्रममें राजा दर्शनोंके निमित्त ठहरा. वहीं **शकुन्तला** और अपने पुत्रसे मिला उन्हें लेकर महर्षि कश्यप और अदितिसे आशीर्वाद पाय स्त्री पुत्र सहित राजा अपनी राजधानी में आया, शकुन्तलाका दुःखजानकर मेनकाने एक अप्सरा द्वारा कश्यपजीके आश्रममें इसे उठामँगाया यहीं शकुन्तलाके पुत्र हुआ तपस्वियोंने उसका नाम सर्वदमन रक्खा और पीछे यही सम्राट् होकर भरतनामसे विख्यात हुआ।

शकुन्तलाकी रचना विशेषकर "**पद्मपुराण**" के आधारपर है।



नाटकपात्र ।

(पुरुष)

सूत्रधार–नाटकका प्रबन्धकर्ता ।
दुष्यन्त–हस्तिनापुरका पुरुवंशी राजा ।
माढव्य–दुष्यन्तका मित्र और विदूषक ।
सर्वदमन–शकुन्तलासे उत्पन्न दुष्यन्तका पुत्र ।
सोमरात–राजाका पुरोहित ।
करभक–दूत ।
मित्रावसु–दुष्यन्तका साला नगरका कोतवाल ।
वातायन–रनिवासका रक्षक ।
जानुक–सिपाही ।
सूचक–सिपाही ।
कुम्भलिक–शक्रावतार तीर्थका धीमर ।
रैवतक–द्वारपाल ।
सारथी–रथ चलानेवाला ।
कण्व–तपोवनके अधिष्ठाता शकुन्तलाके पालक पिता महर्षि ।
कश्यप–मरीचिके पुत्र ब्रह्माके पोते ।
शार्ङ्गरव– } कण्वके शिष्य ।
शारद्वत– }
गालव–कश्यपका शिष्य ।
मातलि–इन्द्रका सारथी ।

(स्त्री)

नटी–सूत्रधारकी स्त्री ।
शकुन्तला–दुष्यन्तकी प्रिया विश्वामित्रसे मेनकामें उत्पन्न ।
प्रियम्वदा– } शकुन्तलाकी सखी ।
अनसूया– }
गौतमी–कण्वकी बहन एक तपस्विनी ।
वसुमती–दुष्यन्तकी एक रानी ।
सानुमती–मेनकाकी सखी एक अप्सरा ।

तरलिका–रानी वसुमतीकी दासी ।

वेत्रवति– } रनिवासकी द्वारपालिका ।
प्रतिहीरी– }

परभृतिका-- } उपवनकी रखानेवाली दो युवास्त्री ।
मधुरिका-- }

सुव्रता--सर्वदमनकी सिखानेवाली ।

अदिति--कश्यपमुनिकी स्त्री ।

यवनी--राजसेवकिनी आदि ।

संकेत ।

१–नाटकके प्रारंभमें जो एक ब्राह्मण रंगभूमिमें आकर सभाको आशीर्वाददेता है, उसको **नान्दी** कहते हैं और नान्दीके पीछे **सूत्रधार** आकर जो बातचीत करता है और नाटकका विषय वर्णन करताहुआ कुछ आप गान करता और दूसरे पात्रोंसे गवाता है इस वार्तालापको **प्रस्तावना** कहते हैं, नाटक खेलनेवालोंके मुखियाको **सूत्रधार** कहते हैं ।

२–दूसरे ग्रंथोंमें जैसे अध्याय आदि होते हैं वैसे नाटकोंमें विभाग करनेवाले अंक होतेहैं यदि किसी अंकके प्रारंभमें कोई अधिक प्रसंग आता है उसको जब लिखते हैं तो वह **विष्कम्भक प्रवेशक** वा **गर्भाङ्क** कहाता है ।

३–जहां **नाटक** खेलाजाता है उसको **रंगभूमि** कहते हैं, और परदेके पीछे जहां नाटकपात्र वेश बदलते हैं अथवा खेलकर चलेजाते हैं उसे **नेपथ्य** कहते हैं ।

४–जो लेख ( ) या [ ] चिह्नके भीतरहों वह नाटकपात्रका वचन नहीं जानना, पढनेवालोंके समझानेके निमित्त नाटकपात्रोंका भाव बताया गया है, और जहां आपही आप लिखा है वह मनमेंही विचारा जानना इसके पीछे जहां (प्रगट) लिखा है वह सबको सुननेके निमित्त है।

५–जहां किसीका आना जाना लिखा है इससे जानना कि वह पात्र रंगभूमिमें आया वा नेपथ्यमें गया ।

श्रीगणेशाय नमः ।

शाकुन्तल नाटक.

(स्थान रङ्गभूमि.)

(नान्दी मङ्गलपाठ करताहुआ आता है)

(राग कलिंगडा)

कर्ता आदि सृष्टि जेहि जायो ।
सो जल और जो विधिवत आहुति, लेत अग्नि जेहि नाम बतायो । यज्ञ करत जेहि कहत होत्री कर दोउ जोति समय सधवायो । स्थित सचराचरमें व्यापक, जेहि गुण शब्द अकाश लखायो । सर्वबीजकी कहत प्रकृति जेहि, जासे प्राणिवन्त जगपायो । आठमूर्तिमें जो प्रत्यक्ष शिव, मिश्र तुम्हें रक्षहि मनभायो ॥ १ ॥

(नान्दीके पीछे सूत्रधार आया)

सूत्रधार–(नेपथ्यकी ओर देखकर) प्यारी ! जो शृंगार करचकी हो तो यहां आओ ।

(प्रवेशकरके)

नटी–आर्यपुत्र ! मैं यह आई ।

सूत्रधार–प्यारी ! यह सभा श्री १०८ श्रीमहाराजाधिराज प्रमरवंशावतंस छत्रपुराधीश्वर श्रीविश्वनाथसिंहदेवजू महोदयकी है । सो आज कालिदासकृत अभिज्ञान शाकुन्तलनाटक "कि, जिसको मुरादाबाद निवासी पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रने भाषा गद्यपद्यमें रचाहै" की लीला करनी है सो प्रत्येक पात्रको सावधान होना चाहिये ।

नटी–स्वामिन् ! आपका प्रबन्धही ऐसा है कि, कुछ भी न्यूनता न होगी. "पर यहतो कहो कि, यह जगत्प्रसिद्ध कविका नाटक भाषामें क्यों खेलाजाता है ?"

सूत्रधार–"प्यारी अब वह समय नहीं है कि, सर्व साधारण संस्कृत समझसकैं, और संस्कृत समझना तो क्या हमारे भारतवासी अपनी भाषा और सर्वगुणआगरी नागरीकाभी आदर नहीं करते, हां श्रीमान् न्यायपरायण सरएन्टोनी मेकडानल महोदय लेफ्टिनेण्ट गवर्नर N. W. P. को धन्यवाद है कि, जिन्होंने हिन्दीकोभी न्यायालयोंमें स्थान दिया, इससे कुछ उन्नतिकी सम्भावना है, पर भारतवासी अबभी इसओर भलीभाँति नहीं झुके हैं, इसकारण उनकी रुचि बढानेको हिन्दीभाषामें नाटक करते हैं" मैं तुमसे अपना सिद्धान्त कहताहूं कि:–

तबहिं भलो नाटक हम जानै ।
जेहि लखि पण्डित जन सुखमानै ॥
नाहिंत अति शिक्षित मन माहीं ।
सुधरनकी दुचितई सदाहीं ॥ २ ॥

नटी–स्वामिन् ! यह सत्य है अब कार्यके निमित्त आज्ञा दीजिये ।

सूत्रधार–इस सभाके प्रसन्न करनेके सिवाय और क्या आज्ञा है कि, यह उपभोगके योग्य ग्रीष्मऋतु अभी प्रारंभ हुई है इससे इसी ऋतुके योग्य कुछ गाओ, देखो:–

(राग झंझोटी)

कैसे नीके लागत हैं ग्रीषमके भावरी ॥ आस्ताई ।
साँझको समय निहार पावत सुख नरो नार ।
उपजत सुख बार बार जीको बड़ो चावरी ।
नदी औ सरोवर जन न्हाये होत शीतलतन ।
छाया सुखदेत विपिन मोदको बढावरी ।

शीतल सुगंध सनी जीको सुख देत घनी।
पाटलके फूल गंध लिये चलै बावरी ॥ ३ ॥

नटी–सत्य है. [गाती है]

(राग वसन्त)

कोमल नव अंकुर युत केशर।
ईषत चुम्बत भ्रमर रहसकर,
अंकम भरत मोद निज हियभर।
देखो नव यौवन वनवासिनि,
शिरसफूल आभूषन करकर।
धरत श्रवण पावत अतिशोभा,
ग्रीषमकी ऋतु है बड़ि सुन्दर ॥ ४ ॥

सूत्रधार–प्यारी! अच्छा गाया, धन्य है इस रागसे सुनने वालोंकी चित्तवृत्ति एकाग्र होकर, रंगभूमि सब ओरसे चित्र लिखितकी समान होगई, अब किस प्रकरणसे इस सभाके महात्माओंको प्रसन्न करैं?

नटी–स्मरण नहीं कि, स्वामीने अभी कहा था कि, अभिज्ञान शाकुन्तल नामक अपूर्व नाटकका खेल करना होगा।

सूत्रधार–आर्य! अच्छी सुरत दिलाई मैं तो इस समय भूलही गया था कारण कि:–

दो०–मधुरगीत तव मम हियो, खैंच्यो इमि बलवन्त।
जिमि लायो कर हरण यह, हरिण नृपति दुष्यन्त ॥ ५ ॥

(दोनों बाहर गये)

इति प्रस्तावना।

शाकुन्तल नाटक ।

अंक १.

स्थान वन ।

(रथपर चढा धनुष बाण हाथमें ले राजा दुष्यन्त हरिणको खेदता सारथी सहित आया)

सारथी–(पहले कुरंगकी ओर फिर राजाकी ओर देखकर) हे आयुष्मन् !

दोहा–**लखि कुरंगको अरु तुम्हैं, हाथ लिये धनु बान ।**
साक्षात् जनु यज्ञमृग, पीछे शिव भगवान ॥ ६ ॥

राजा–हेसूत ! यह मृग तौ हमे बहुत दूर लेआया है ओर फिर यह देखो-

कैसे रथको हरिण विलोकत ।
लखि-घहरान अधिक स्यन्दनकी,
चलत उतावल ग्रीवा मोरत ।
कबहूँ बाण लगनके भयसे,
आगे पिछलो गात सकोरत ॥
छिन २ मगमें थाकित मुखसे,
दाभ गिराय चला पुनि दौरत ।
लखो कुलांच भरत अब कैसी,
भूतलमाहिं न निजपग जोरत ॥ ७ ॥

और देखो अब ऐसे वेगसे जाता है कि, सहज दिखाईभी नहीं पडता ।

सार०–हे महाराज ! अबतक भूमि ऊँची नीची थी, इससे मैंने रास रोककर रथ धीरे चलाया था, इससे यह मृग दूर निकलगया है, अब धरती एकसी आई अभी लेलेंगे ।

राजा–तो अब घोडोंकी रास छोडो ।

सारथी–जो महाराजकी आज्ञा (रथको भरदौड चलाय उसके वेगका निरूपण करके) महाराज देखो ! देखो:–

अश्वकी ढीलीं की जब रास, वेगसे दौरपरे तत्काल ।
अगले तनुको तान कनौती, लीन्ह दबाय विशाल ॥

चमर शिखा हालत नहिं नेकहु, रज न लगत खुरताल।
झपटत मानहु वेग हरिनको, सह न सकत भूपाल ॥८॥

राजा-सत्य है यह घोड़े इन्द्र और सूर्यके घोडोंके वेगकोभी जीतकर चलते हैं।

(झंझौटी काजिला)

दूर रहेसे वस्तु जौनसी पहले, झीनी परी दिखाई।
निकट भयो सो मोटी दीसति, कटीहुईसी जुरी लखाई॥
टेढी निकट भये जो दीखत, दूरभये सीधी दरशाई।
रथके वेग निकट अरु आगे, दूर न अन्तर नेकु रहाई ॥९॥

सारथि ! देखो अब हम इसे गिराते हैं (धनुषपर बाण चढाया)

(नेपथ्यमें)

हे महाराज ! इसे मत मारो मत मारो यह आश्रमका मृग है।

सारथी-(शब्द सुनकर देखताहुआ) हे महाराज! वाणके सन्मुख आये हुए हरिणके बीचमें यह तपस्वी खडे हैं।

राजा-(चकित होकर) तौ घोडोंको रोको।

सारथी-जो आज्ञा (रथ रोकता है)

(एक तपस्वीका दो शिष्यों समेत प्रवेश)

तपस्वी-(बाँहें उठाकर) हे राजन् ! यह आश्रमका मृग है इसे मत मारो यह मारनेके योग्य नहीं है।

दोहा-भलीभाँति संधानकृत, लो उतार यह बान ॥
दुखियन रक्षत शस्त्र तव, लेत न विन अघ प्रान ॥१०॥

राजा-यह मैंने बाण उतार लिया (बाण उतारता है)

तपस्वी-पुरुवंशदीपक ! आपको यही चाहिये।

दोहा-जन्म पाय पुरुवंशमें, तुम्हें उचित नृप एह ॥
चक्रवर्त्ति गुणयुत सुवन, होय तुम्हारे गेह ॥ ११ ॥

दोनों तपस्वी (भुजा उठाकर) अवश्य तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र हो।

दुष्यंत–(प्रणाम करके) ब्राह्मणोंके वचन शिरमाथे लिये ।

तपस्वी–हे राजन् ! हम तो समिधा लेने जाते हैं और यह कुलपति कण्वका मालिनीनदीके किनारे आश्रम दीखता है, यदि अवसर हो तो वहां चलकर अतिथिसत्कार ग्रहण कीजिये. और

(राग काफी)

मुनियनके आश्रममें जाई ।
देखहुगे सब काज धर्मके होत विघ्न विनराई ।
तब जानहुगे ये मेरी भुज धनु गुणचिह्न सुहाई ।
कितने सत्पुरुषनकी रक्षा होत जगत सुखदाई ॥१२॥

राजा–महर्षि आश्रममें हैं कि, नहीं ?

तपस्वी–अपनी पुत्री शकुन्तलाको अतिथिसत्कारकी आज्ञा देकर उसी की ग्रहदशा शान्त करनेके निमित्त सोमतीर्थको गये हैं ।

राजा–अच्छा ! हम उस कन्याकोही देखेंगे और वह हमारा भक्तिभाव महर्षिसे कहेगी ।

तप०–तबतक हमभी अपने कार्यको जाते हैं (शिष्यों समेत गया)

राजा–हे सारथि ! रथ चलाओ इस पवित्र आश्रमके दर्शन कर अपना जन्म सफल करैं ।

सूत–जो श्रीमान्‌की आज्ञा (रथको चलाया)

राजा–(चारों ओर देखकर) हे सूत ! जो कोई न भी बताता तोभी यहां हम जानलेते कि, तपोवन समीप है ।

सूत–कैसे ?

राजा–क्या तुम नहीं देखते ? कि यहां–

(दादरा)

देखो ये तपोवनके दीखै है चिह्नसारे ॥ आस्ताई ॥
तोतोंके कोटरोंसे गिरकर समेके चावर,
नीचे परे तरुनके शोभाके भरे भारे ॥
हिंगोट कूटनेकी चिकनी धरी शिला है,

कैसे हिले हिरन हैं टरते है नहीं टारें ॥
भीजे बसनकी बूँदें पगवाटमे नदीलों,
पडकरकै बनीरेखा शोभा हैं कैसी धारे ॥
अतिवेगसे पवन यह सरिताका जल हिलोरै,
हुइ श्वेत मूल धुलकर जो वृक्ष हैं किनारे ॥
नई कोंपलोंके पत्ते लगकर धुवाँ हवनका,
देखो तौ नेक चितधर धुँधरे हुयेहैं सारे ॥
उपवनके आगे भूमीकी दाभ जो कटी है,
निश्शंक चररहेहैं मृगपोत ये दुलारे ॥
दुर्लभ है गृहीजनको ये शोभा तपोवनकी,
पाये जो दरश हमने धनभाग हैं हमारे ॥ १३ ॥

सा०-सब सत्य है मैंने जानलिया ।

राजा-(थोड़ी दूर चलकर) तपोवननिवासियोंके कार्यमें विघ्न न पड़े इससे रथ यहीं खड़ाकर लो हम उतरलैं ।

सूत-मैंने रास थामली महाराज ! उतरलें ।

राजा-(उतरकर) हे सूत! तपोवनमें विनीत वेषसे जाना चाहिये, इस कारण यह तुम लिये रहो (धनुष और आभूषण सारथिको दिये) हे सूत ! जबतक आश्रमवासियोंके दर्शन करके मैं यहां लौटिआऊं, तब तक तुम घोडोंकी पीठ ठंढी करलो ।

सूत-जो आज्ञा (गया)

राजा-(लौटकर और देखकर) यह आश्रमका द्वार है अब इसमें चलूं (प्रवेशकर और शकुन देखकर)

(काफी)

यह तौ पुण्यक्षेत्र अतिपावन ।
फरकतबाँह कहा फलकारिहै, यहथल शोक नशावन ।
अरु जो होय नाहिं कछ अचरज, भलीबात मनभावन ।
होनहारके द्वार अनेकन होत चहत जब आवन ॥ १४

(नेपथ्यमें)

सखियों ! इस ओर आओ इसओर आओ ।

राजा–(कान लगाकर) अहो ! इस फुलवारीके दक्षिण ओर क्या बोलसा सुनाई देता है, इधरहीको चलूं (घूमकर और देखकर) अहा ! यह तो तपस्वियोंकी कन्या हैं, अपने २ वित्तके अनुसार कोई छोटी कोई बड़ी गगरी लिये वृक्षोंके सीचनेको जातीहैं (निपुणता निरूपण करके) अहो ! इनका कैसा मधुर दर्शन है ?

आश्रमकी यह तियवारी हैं।
इनको रूप निहारिमनोहर,
तिय रनिवासन छविधारी हैं ।
तिमि वनलता आपने गुणसे,
उपवन बेलि जितन हारी हैं॥
यह सुकुमारी वनकी शोभा,
करत रूप गुण उजियारी हैं ॥ १९ ॥

तबतक इस वृक्षकी छायामें खडा हो इनकी बातें सुनू [खडा होकर देखने लगा] (उसीप्रकारसे दो सखियोंके संग शकुन्तला आई)

शकुन्तला–सखियो ! इस ओर आओ इस ओर आओ ।

अनसूया–अरी शकुन्तला ! मैं जानती हूं यह आश्रमके वृक्ष पिता कण्वको तुझसेभी अधिक प्यारे हैं, नहीं तो नई मल्लिकाके फूलोंके समान कोमलाङ्गी तुझको इनके सींचनेकी आज्ञा क्यों देजाते ।

शकुं०-हे सखी ! निरी पिताकीही आज्ञा नहीं, मेराभी इन वृक्षोंमें सहोदरकासा स्नेह होगया है (पेडको पानी दिया)

राजा–(आपही आप) क्या कण्वकी बेटी शकुन्तला यही है, महात्मा कण्वका चित्त बड़ा कठोर है जिन्होंने इसको आश्रमधर्ममें लगाया है।

(जोगिया आसावरी)

क्या यही है ऋषीकी दुलारी,
जो रही सींच बिरवें कुमारी ॥

इससे ऐसी तपस्या कराना,
जैसे पंकजके दलसे अयाना ॥
छेद नीचाहै छौंकरकी डारी ॥ क्या० ॥
उन मुनीने न कुछभी विचारी,
ऐसी जो रूप गुणकी उजारी।
कैसे सौंपू उसे कामभारी ॥ क्या० ॥ १६ ॥

जोभी हो वृक्षकी ओटमें होकर इनको बातचीत करते निःशंक देखूंगा (एकान्तमें बैठगया)

शकुं०-हे सखि अनुसूया ! प्रियम्वदाने मेरी वल्कलकी कंचुकी बड़ी कसकर बांधी है जिससे अंग बंधसा गया है इसे ढीली करदे ।

अन०-अच्छा ढीली करतीहूं (ढीली करने लगी)

प्रियम्व०-(हँसकर) मुझे दोष क्यों देती है ? अपने यौवनको दोष दे जो तेरे उरोजोंका विस्तार करता है ।

दुष्यं०-(आपही आप) इसने ठीक कहा वल्कलवस्त्र इस मोहिनीके गातको शोभा देताही है ।

एहो मुनिसुताके गात ।
बँधे कंधर वसन वलकन तन उमंग लखात ।
हमें ऐसी विमल शोभा नहिं कहूं दरशात।
ढके युगल उरोज पूरी धरत शोभा नाहिं ।
छिपरह्यो है फूल जैसे पीत पातनमाहिं ।
कह्यो मैंने भूलकर नहिं सजत वल्कल याहि ।
लगत नीके बालको सब रूप सागर आहि ।
पंकमें सरसिज सुहावन, शशिहि कारी रेख ।
लगतसुन्दर तिमि तिया यह किये तपसी भेख ।
सत्य है करतार जेहिको देत रूप अपार ।
भली लागत ताहि सब कुछ लेहि जो तनुधार ॥ १७ ॥

शकु०–(आगे देखकर) सखियों देखो ! पवनके लगनेसे आलके पत्ते कैसे हिलते हैं, मानो अंगुलियोंसे मुझे अपने समीप बुलाते हैं, चलो ! वहां चलकर इसकाभी मन रख आवें । (वृक्षके समीप गई)

प्रिय०--सखी शकुन्तला ! तू छिनभर यहीं खडी रह, कारण कि तेरे खड़े रहनेसे यह बकुलका वृक्ष ऐसा लगता है मानो लता लिपट रही है ।

शकु०–प्यारी बात कहनेसेही तो तेरा नाम प्रियम्वदा हुआ है ।

राजा–प्रियम्वदाने शकुन्तलासे प्यारी बात कही पर सत्य भी कही कारण कि–

दोहा–मधुर अधर पल्लव लता, विमल भुजा जिमि डार॥
सुमन सदृश अँगमें भरो, यौवन मनहु उदार ॥ १८ ॥

अनसू०--हे शकुन्तला जिसका तैंने वनज्योत्स्ना नाम रक्खा है, यह नई चमेली आमकी कैसी स्वयम्वरवधू[1] बनी है, इसे तू कैसे भूली जाती है ।

शकु०--जो इसे भूलगई तो अपनेकोभी भूल जाऊंगी, (लताके निकट जाकर और देखकर) आली ! अच्छे समयमें यह लता और वृक्ष मिले हैं, वनज्योत्स्ना तो नये फूलोंसे यौवनवती हुई है, और आमभी नये चिकने पत्तोंसे उपभोगके योग्य है (खड़ी होकर देखने लगी)

प्रिय०–सखी अनसूया ! तू जानती है कि, शकुन्तला वनज्योत्स्नाको बडे चावसे क्यों देखरही है?

अन०–मैं नहीं जानती तूही बता ।

प्रिय०–कारण यह है कि, जैसे वनज्योत्स्ना अपने अनुरूप वरको प्राप्त हुई है, इसी प्रकार मुझेभी मेरे योग्य वर मिले ।

शकु०–यह तो तू अपना मनोरथ कहती है (पानीका घड़ा झुकादिया)

राजा–(आपही आप) निश्चय यह ऋषिकी बेटी सजाती स्त्रीसे नहीं है अथवा मेरे मनमेंही कुछ सन्देह उपजा है ।

---

१ जिसने स्वयं अपना पति खोज लिया हो ।

जैजैवन्ती ।

क्यों मन यह मरजाद न मानत ।
याकी चाह बढत छिनही छिन,
तासों क्षत्रिसुता यहि जानत ॥
सज्जन मनकी विमल भावना,
शंक दूरकर निज मति ठानत ॥ १९ ॥

पर तोभी इसका ठीक पता लगाऊंगा ।

शकुन्त०–(व्याकुल होकर) दई ! दई ! यह ढीठ भौंरा पानीकी बूंदोंसे डरा हुआ नई चमेलीको छोड़ बार बार मेरेही मुखपर आता है कैसी करूं (भौंरेकी बाधाको दिखाती है)

राजा–(मन लगाकर देखकर)

धन धन भाग तिहारे रे भौंरा,
लेत तुही सुखसारे रे भौंरा ॥
चंचल कोयनि कंपति अँखियां,
तिन्है छुआत गुणवारे रे भौंरा ॥
श्रवण लागि गुंजरत मन्द मनु,
मर्म सुनावनवारे रे भौंरा ॥
वह टारत करसे तुहि जबलौं,
लेत अधररस जारेरे भौंरा ॥
हम तो खोजत जात पातहू,
धनि तू रति सुखपारे रे भौंरा ॥
तोहिं लखत इत उत मुख फेरत,
भौंह मरोर शिखारे रे भौंरा ॥ २० ॥

शकुन्त--यह ढीठ भौंरा न मानेगा अब यहांसे अन्त चलूं (दूसरी ओर जाकर और कटाक्षसे देखकर) अरी ! यह तो यहांभी आता है, सखियो ! इस दुर्विनीत पापी भौंरेने मुझे सताया है,इससे मुझे बचाओ ।

दोनों–(हँसकर) हम बचानेवाली कौन हैं दुष्यन्तको पुकार वही बचावेगा कारण कि, तपोवनके रक्षकभी राजाही हैं ।

राजा-प्रगट होनेका यह अवसर तो अच्छा है। मतडरो मत डरो (ऐसा आधा कहकर मनमें) परन्तु इससे तो विदित होजायगा कि, मैं राजा हूं जो कुछ हो कुछ तो बातचीत करूंहीगा।

शकु०-(थोडी दूरपर खडी होकर और कटाक्षसे देखकर) यह तो यहां भी आता है हाय अब कहां जाऊं।

राजा-(झटपट आगे बढ़कर)

छंद-मैं पुरुवंश बनों जबलों भूमण्डलको रखवारो।
तबलों कौन दुष्ट है जो मुनिसुता सतावनहारो॥
पहुँच्यो आय समीप तिहारे अब मनतैं भय टारो।
यह निर्विघ्न तपोवन यामें सब शंका निरवारो॥२१॥

(राजाको देखकर तीनों चकित होगई)

अन०-आर्य! यहां सतानेवाला तो कोई नहीं है यह हमारी प्यारी सखी भौंरेके घेरनेसे डरगई है, (शकुन्तलाकी ओर दृष्टि करती है)

राजा-(शकुन्तलाके समीप जाकर) हे बाले! तुम्हारा तपोव्रत तो सफल है

(शकुतला लाजसे नीचेको देखती चुप रहगई)

अन०-तुम सरीखे पाहुनेके पधारनेसे तपोव्रत सफल क्यों न होगा। सखी शकुन्तला! तू जा और कुटीमेंसे फल फूल और अर्घ्य ला,चरण धोनेको जल यहीं है (घटकी ओर देखती है)

राजा-तुम्हारे मीठे वचनोंसेही हमारा आतिथि सत्कार होगया।

प्रियम्व०-तो आओ इस सप्तपर्णवृक्षकी शीतलछायावाली वेदीमें बैठकर विश्राम लेलो।

राजा-तुमभी तो इसकामसे थकगई होगी आओ छिनभर बैठलो।

अनसू०-(शकुन्तलासे हौलेसे) शकुन्तला! अतिथिके निकट बैठना उचित है। आओ! यहां बैठलें (सब बैठतीं हैं)

शकुन्तला-(आपही आप) इस पुरुषको देखकर मेरे मनमें ऐसा विकार उपजता है जो तपोवनके योग्य नहीं है।

राजा-(सबको देखकर) हे सुन्दरियो! समान अवस्था और समान रूपमें तुम्हारी परस्परकी प्रीति बड़ी अच्छी लगती है।

प्रियम्वदा-(हौले अनसूयासे) अनसूया ! यह अतिथि कौन है? जिसके रूपमें चतुराईके साथ गंभीरता और वचनोंमें चतुरताके साथ मिठास है यह लक्षण तो बड़े प्रतापियोंके हैं ।

अनसू०-(हौले प्रियम्वदासे)सखी! मैंभी इसी अचम्भेमें हूं अब इससे पूछती हूं (प्रगट) हे आर्य्य! तुम्हारे मीठे बोलोंके विश्वासमें आकर मेरा जी यह पूछनेको करता है कि आप किस राजवंशके भूषणहो? कौनसे देशको विरहमें व्याकुल छोडआये हो, किस कारण तुमने अपने सुकुमार शरीरको इस तपोवनमें आकर पीडित किया है ।

शकुन्त०-(आपही आप) हे मन ! व्याकुल मत हो तेरे मतेकी बात अनसूया कररही है ।

दुष्य०-(आपही आप) क्या मैं अपने आपको बताऊं, अथवा कैसे अपनेको छिपाये रहूं, जो हो इससे यह कहूंगा (प्रकाश) हे ऋषिकुमारि ! पुरुवंशी राजाने मुझे धर्माधिकारमें नियुक्त किया है, सो मैं आश्रम देखने आया हूं कि, तपस्वियोंके कार्य्योंमें कुछ विघ्न तो नहीं होता ।

अनसू०-आपके पधारनेसे अब धर्मचारी सनाथ हुए ।

(शकुन्तला शृंगारलज्जासे लज्जित हुई)

दोनों-(दोनोंके आकारको देखकर हौले हौले) हे शकुन्तला ! यदि आज पिताजी घर होते !

शकुन्त०-तो क्या होता ?

दोनों-तो अपने जीवनसर्वस्वकोभी देकर इस अनोखे पाहुनेको कृतार्थ करते ।

शकुन्त०-चलो हटो मनसे गढकर बातें बनाती हो, मैं तुम्हारी न सुनूंगी ।

(अलग जाबैठी)

राजा-तो मैं भी अब तुम्हारी सखीका वृत्तान्त पूछता हूं ।

दोनों०-महात्मा ! यह आपका अनुग्रह है ।

राजा०–कण्व तो सदाके ब्रह्मचारी हैं यह बात विख्यात् है. फिर यह तुम्हारी सखी उनकी पुत्री कैसी हुई ?

अनसू०–सुनिये । कुशिकके वंशमें एक बडे प्रतापी राजर्षि हुए हैं ।

राजा–हां मैंने सुने हैं ।

अनसूया–उन्हींसे हमारी प्यारी सखींकी उत्पत्ति जानो, और तात कण्वको यह पडी मिली थी उन्होंनेही इसको पाला पोषा है इससे वह इसके पिता कहाते हैं ।

राजा–पड़ी मिली थी यह सुनकर तो बडा आश्चर्य होता है यह वृत्तान्त तो जड़से सुननेकी इच्छा है ।

अन०–सुनिये महाराज ! जब उस राजर्षिने गौतमीके किनारे बड़ा तप किया, तब देवताओंने शंका मानकर उनके तप नियममें विघ्नकरनेके निमित्त मेनका नाम अप्सरा भेजी ।

राजा–सत्य है दूसरेकी समाधिसे देवताओंका डरना प्रसिद्ध है ।

अन०–तब वसन्तके प्रारम्भमें मेनकाकी उन्माद करनेवाली छबि देखतेही (इतना कह लाजसे शिर झुकाय मौन होगई)

राजा–आगेकी बात हमने जानली, यह अप्सराकी बेटी है ?

अन०–हां ।

राजा–सत्य है नहीं तो ।

दोहा–मनुज तियनमें रूप अस, कैसे संभव होय ॥
वसुधासे निकसति नहीं, विद्युछटाकी जोय ॥२२॥

(शकुन्तलाने शिर झुकालिया)

राजा–(आपही आप) तो अब मनोरथ पूरे होनेका समय दिखाई दिया परंतु सखीने जो वरमिलनेकी बात हँसीमें कही थी, इसको सुनकर मेरे मनमें दुविधासे अधीरता होती है ।

प्रिय०–(मुसकाकर पहले शकुन्तला ओर फिर राजाकी ओर देखकर) क्या आपको कुछ औरभी पूछना है ?

(शकुन्तला सखीको अंगुलीसे वर्जती है)

राजा–तुमने मेरे मनकी ठीक जानली मुझे इसअनूठे चारित्रके सुननेकी अभी और लालसा है।

प्रियम्वदा--तो विचारकी क्या बात है, तपस्वियोंसे कुछ पूछनेमें रोकटोक नहीं है।

राजा–मैं तुम्हारी सखीके विषयमें यह पूछना चाहता हूं कि-

(गीतिका छन्द)

रतिराज काज बिगार कारन होतव्रत वनवासको।
व्याहलोंही पालि है तुम्हरी सखी कह तासुको ॥
खेलि है अथवा सदा निज नैन सम हरिनीनमें।
करहि अवलम्बन महाव्रत रहै मग्न अलीनमें ॥ २३ ॥

प्रियम्व०–हे आर्य ! सखी तो धर्माचरणमेंभी परवश है, विवाहकी कौन कहै इसके पिताका संकल्प है कि, अनुरूप वर मिले तो दें।

राजा--(आपही आप) यह संकल्प पूराहोना तो कुछ कठिन नहीं है।

दोहा--**रे मनकर अभिलाष अब, दूरभयो सन्देह ॥**
जानी अग्नी जाहि सो, रत्न अलंकृत देह ॥ २४ ॥

शकुन्तला–(रिससी होकर) ले अनसूया ! मैं जाती हूं।

अनसू०--क्यों ?

शकुन्तला०--मैं पूज्य प्रियवादिनी गौतमीसे जाकर कहूंगी कि, यह मुझसे अनकहनी बातें कहती हैं।

अनसू०–सखि ! तुझे यह उचित नहीं है कि,ऐसे अनोखे पाहुनेक विना आदर किये छोड़कर चली जाय।

(शकुन्तला विना कुछ कहे चलदी)

राजा--(ऐसे उठा मानो रोकेगा फिर रुककर आपही आप) अहा ! बाहरकी चेष्टाओंसेही कामियोंके मनकी बात प्रगट होजाती है।

(परज)

अनुचित काज कियोहो चाहत।

पाछे चलत तियाके काहे,
नहिं निजकुल मर्याद निबाहत।
यदपि न उठचो तदपि यों मानत,
कछुकर लौट पऱ्यो मन दाहत।
रोकलियो कुलकान आन मोहिं,
किमि जिय मोह सिंधु अवगाहत॥ २५ ॥

प्रियम्व०--(शकुन्तलाको रोककर) सखि तुझे जाना न होगा।

शकु०--(भौं चढाकर) क्यों ?

प्रियम्वदा--अभी तुझे दो बिरुए और सींचने हैं, सो आ इस ऋणको चुकाकर फिर चलीजाना (बलसे रोकती हैं)

राजा--सुन्दरि ! वृक्ष सींचते २ तुम्हारी सखी थकीसी दीखती है कारण कि-

(रागदेश सोरठ)

घट करमें लिये सुकुमार बाल, तरु सिंचत हथेली भई लाल, दोऊ उठत उरोज उसास चाल॥ आस्ताई॥ भयो आज सखीको श्रम अटूटि, रहिं स्वेद कपोलनि बूंद छूटि, रहे चिपक करन भूषण विशाल॥ १ ॥ सब अलक गई विथराय आज, कर धारिरही तेहि सहित लाज, जनु प्रेमफन्द डारनकिमाल॥ २६॥

सो मैं यह ऋण यों चुकाता हूं (अँगूठी देनेकी इच्छा करता है) (दुष्यन्तका नाम अँगूठीपर बांचकर दोनों एक दूसरेकी ओर निहारती हैं)

राजा--इसके लेनेसे तुम यह संकोच मतकरो कि, यह राजाकी वस्तु है, कारण कि मैंभी तो राजपुरुष हूं मुझे यह राजाके यहांसे मिली है।

प्रियम्व०--तो यह आपकी अँगुलीसे वियुक्त होनेके योग्य नहीं हैआपके वचनसेही ऋण चुकगया. (कुछ हँसकर) सखी शकुन्तला ! इन महानुभावने वा महाराजने दया करके तुझे ऋणसे चुकादिया अब चाहे तो तू चलीजा।

शकुन्तला-(आपही आप) जो अपनेको वशमें रखसकी तो (प्रगट) जानेकी आज्ञा देनेवाली अथवा रोकनेवाली तुम कौन हो ?

(दादरा)

पियके वचन भूलि नहिं जैहौं।
हियरेके अन्तर नित राखौ, जो अपने वशमें हौ रेहौं ॥
प्रथम मिलाप न देख सकतहै, मेरो श्रम केहिभाँति भुलैहौं
दयानेह उपकार सुबोलनि मुएहू मनतें नाहिं मिटैहौं ॥
ममहित धरत कमलकर गगरी, याके पलटे मैं कहदैहौं ?
मिश्र प्राण सर्वस्व हमारे तन मन वार नेह इन लैहौं॥२७॥

राजा-(शकुन्तलाको देखकर आपही आप) जैसा मेरा मन इससे लगा है वैसाही इसकाभी मुझसे उलझा दिखाई देता है, अथवा मेरे मनोरथ पूरे होनेके लक्षण तो दीखते हैं।

(दादरा)

मनकी लगन ये छिपाए छिपैना,
यदपि न बातन बात मिलावत,
तदपि सुनत हितकर मम वैना।
सन्मुख आय होत नहिं ठाढी,
कियेहि रहत इतको दोउ नैना।
यह सकुचनि यह नेह दुहुन दिसि,
लखि २ जिय अब धीर धरैना ॥ २८ ॥

(नेपथ्यमें)

हे हे तपस्वियो आओ मिलकर तपोवनके जीवोंकी रक्षा करो, मृगया-खेलता हुवा राजा दुष्यन्त समीप आपहुँचा है, देखो.-

यह देखो कैसी धूर उडी सब वनमें छाई है॥आस्ताई॥
घोडोंके पगोंसे उडकर, पडती वसनोंपै आकर।
जो सूखरहे हैं वृक्षोंपर धूसरता पाई है॥
सन्ध्याकी अरुणता माहीं, टीड़ीदल ज्यों दरशाहीं।

तैसे घेरो आकाश विपत्ति वनपर आई है ॥
देखो यह वनका करिवर, राजाके रथसे डरकर ।
हरनोंको व्याकुल करता तरु तोरै दुखदाई है ॥
पैरोंमें लताका लंगर, डालै घूमैहै बेडर ।
लगते हैं दाँत कंधेसे पीछे दृष्टि लगाई है ॥
अब चलो यहांसे धाई, कुटियोंमें रहो छिपाई है ।
यह जप तपमें विघ्नरूप अब कौन उपाई है ॥२९॥३०॥

(ऋषिकुमारियोंने कान लगाकर सुना और चौंकपडीं)

राजा (आपही आप) हा धिक् इन पुरवासियोंने मुझे ढूंढते २ यहां आकर तपोवनमें विघ्न डाला, अच्छा अब इनके पास जाना पड़ा ।

दोनों--हे महात्मा ! हम इस वनके वृत्तान्तसे व्याकुल होती हैं हमें अब कुटीमें जानेकी आज्ञा दीजिये ।

राजा--(संभ्रमसे) अच्छा ! जाओ मैं वह उपाय करूंगा जिससे तपोवनमें कोई विघ्न न होने पावेगा ।

(सब उठती हैं)

दोनों--हे श्रेष्ठ ! जैसा अतिथिसत्कार होना चाहिये वैसा हमसे नहीं बना इससे फिर दर्शन देनेको कहते हुए लजाती हैं ।

राजा--ऐसा मतकहो तुम्हारे दर्शनसेही हमारा सत्कार होगया है ।

(शकुन्तला राजाको देखती हुई और बहानेसे ठिटकती हुई सखियोंके संग गई)

राजा (आपही आप) अब नगरकी ओर जानेको तो इच्छा नहीं करती तो अब संगवालोंसे मिलकर तपोवनके समीपही डेरा करूंगा शकुन्तलाके हावभावोंसे मैं अपने मनको उससे नहीं हटासकता

दोहा--व्याकुल मन पीछे चलै, आगे चलै शरीर ॥
फहरावत पीछे ध्वजा, सन्मुख चलत समीर ॥ ३१ ॥

(सब गये)

पहला अंक समाप्त हुआ ।

अंक-२.

स्थान वनके निकट राजाके डेरे ।

(दुःखीहुआ विदूषक आया)

माढव्य-(श्वास लेकर) देखलिया इस मृगयाविहारी राजाकी मित्रतासे हम बड़े दुःखी हैं, यह मृग है, यह वराह है, यह शार्दूल है, दुपहरीमेंभी यही कहते इस वनसे उसवनमें इसमें इससे उसमें दौडना पडता है, गर्मीमें कहीं इतनीभी छाया नहीं मिलती जहां कुछ विश्राम लियाजाय, वृक्षोंके पत्ते गिरनेसे कसैलाहुआ पहाडी नदीका जल पीनेको मिलता है, शूलपर भुना आमिष कुसमय खानेको मिलता है, घोडोंके संग दौडते २ शरीर ऐसा ढीला पड़जाता है कि, रातको अच्छीतरह नीद नहीं आती, और फिर बड़े सबेरेही दासीपुत्र चलो वनको चलो वनको इसप्रकार चिल्ला चिल्लाकर जगादेते हैं, परन्तु इतनेपरभी पीडा नहीं गई,इतने दुःखपर एक नया घाव और लगा, कि कलदिन हमसे बिछोडकर राजा मृगके पीछे धावमान होताहुआ तपस्वियोंके आश्रममें जापहुँचा, वहां मेरे अभाग्यसे उसकी दृष्टि तपस्वीकी कन्या शकुन्तलापर पडी। अब वह नगर जानेको मनभी नहीं करता अबभी इन्हीं बातोंके शोच विचारमें सब रात उनकी आँख नहीं लगी, जबतक राजाको नित्यकर्म करताहुआ न देखलूंगा न जाने तबतक मेरी क्या गति होगी, (घूमकर और देखकर) अहा ! यह वनके फूलोंकी माला पहरेहुए धनुषधारिणी यवनियोंके साथमें मेरा प्रियसखा इधरहीको आता है, तो अब मैं भी अंगभंग करके विकलकी समान खड़ा होजाऊं (लकडी टेककर खड़ा हुआ) चलो योंही विश्राम सही ।

(ऊपर कहेहुए वेषसे दुष्यन्तका प्रवेश)

(दादरा)

दीखत मोहिं तिय मिलन कठिन है।
पर जब भाव विलोकत ताके,
मिलि है अवशि कहत यह मन है।
यदपि कामको भयो, न कारज।
तदपि दोउ दिशि चाह मिलन है।
प्रीतिरीतिको रंग निरालो,
पार लहै जगको अस जन है।

(हँसकर) जब किसीकी किसीसे लगती है तब वह अपने मनकी अभिलाषासे उसके मनका प्रेम अनुमानकर वंचित होता है।

(ईमन कल्याण)

मनकी गति अति अगम अपार।
वह चाहै कहुँ अनत दृष्टिकर अनतैं रही निहार।
है यह नेह दृष्टि मोहिं ऊपर मैं जानी निरधार।
चली मन्दगति होय पियारी चहुँ नितम्बके भार।
मैं जानो यह मोहिं दिखावत निज विलास विस्तार।
रोक्यो सखी भईहो सांची रिस चाहैं सुकुमार।
म जानो एहू कटाक्ष कछु मोहूपर बलिहार।
सत्य कहत कवि कामीजनकी दृष्टि अनीकी धार।
होत आपनेही स्वारथमें जानत सब संसार॥ ३३॥

माढव्य--(वैसेही खड़ारहा) हे मित्र! मेरे हाथ पांव नहीं चलते इससे वाणी मात्रसेही आशीर्वाद देता हूं कि आपकी जय रहै।

राजा--यह तुम्हारा अंगभंग क्यों हुआ ?

विदूषक--अपनी अँगुलीसे आँख चुभाकर, पूछते हो आंसू क्यों आये।

राजा--हम तुम्हारी बात नहीं समझे।

विदूषक--भो मित्र ! देखो यह बेत जो कुबडोंकी होड़ करता है, यह अपने आप टेढा हुआ है या नदीके वेगसे ?

राजा--नदीके वेगसेही झुका होगा ।

माढव्य--इसी प्रकार मेरे अंगभंगकेभी आपही कारण हैं ।

राजा–कैसे ?

माढव्य--भला यह बात तुमको उचित है कि, राजकाज छोड़कर वनमें अहेरियोंके कार्य करो ? यह मैं सत्य कहताहूं कि प्रतिदिन वनके जीवों के पीछे दौडते दौडते मेरा अंग २ टूटगया है, इससे प्रार्थना करता हूं कि, अब कृपाकरके मुझे एकदिन तो विश्राम लेनेको छोडजाओ ।

राजा–(आपही आप) इधर तो यह कहता है और मेरा मनभी ऋषिकुमारीकी सुधमें मृगयासे निरुत्साह होगया है कारण कि-

(कल्याण)

मृगनपर कैसे चलि है बान ।
सिखराई जिन तियको भोरी चितवन अति सुखदान ।
तिनपै धनु उठसकत न करतें दया उठत मन आन ।
अब यह काज बनै नहिं मोते अकुलावतहैं प्रान ।

माढव्य--(राजाके मुखको देखकर) श्रीमान् जाने मनमें क्या शोचरहे हैं मेरी बातती वनमें रोनेके समान होगई ।

राजा–(मुसकाकर) और क्या यही कि, मित्रकी बात अवश्य मानू ।

विदूषक--आप चिरञ्जीव रहैं (उठकर जाना चाहताहै)

राजा--मित्र ठहरो तो अभी कुछ और कहनाहै ।

माढव्य--आज्ञा दीजिये ।

राजा--जब तुम विश्राम लेचुकोगे तब हम ऐसे काममें सहायता लेंगे जिसमें कुछ परिश्रम न करना पडेगा ।

माढव्य--क्या खांडके लड्डू खिलाओगे, तो तो यही अच्छा समय है ।

राजा–अभी कहताहूं कोई है ।

(द्वारपालका प्रवेश)

द्वारपाल--(प्रणाम करके) स्वामीकी क्या आज्ञा है ?

राजा -रैवतक, ! सेनापतिको बुलाओ ।

द्वारपाल--जो आज्ञा (बाहर जाकर सेनापतिके साथ फिर आया) आओ यह महाराज कुछ आज्ञा देनेके लिये तुम्हारी वाट देखते हैं।

सेनापति--(राजाको देखकर) यद्यपि मृगयामें दोष है, पर हमारे स्वामीको तो गुणदायक हुई है देखो तौ ।

(सोरठ)

महराजका शरीर, कैसा बनाहै धीर ।
खैंचैहैं बारबार, धनुषको चढाकै तीर ।
ऐसी गठन भरी, पर्वतका ज्यौं करी ।
श्रमसे न व्यापे धाम, न पावै कलेश वीर ।
आवै न तनपै स्वेद, नहीं दौड धूप खेद ।
दुबराई है शरीरमें, दीखै न कोई पीर ।

(समीप जाकर) स्वामीकी जयहो महाराज ! वनमें श्वापद पशुओंके खोज देखेगये हैं, श्रीमान् कैसे निचिन्त बैठे हैं ।

राजा--इस मांढव्यने मृगयाकी निन्दा करके मेरा उत्साह मन्द कर दिया है ।

सेनापति--(हौले माढव्यसे) तुम अपनी बातपर बनेरहो मैं स्वामीके मन सुहाती कहूंगा (प्रगट) महाराज ! इस रांडकेको बकने दीजिये आपही विचारिये कि, इसमें कितने गुण हैं ।

(सोरठ)

देखो तौ मन विचार, मृगयाके गुण हजार ।
देती है मेद छांट सभी, उदरको सम्हार ।
करती है सह शरीर, चलनेके योग्य वीर ।
पशुओंकी चित्तवृत्तिसे, करती है जानकार ।
चलताहुआ हरिन, जो मारते हैं जान ।

उसको यही सिखाय करै मोद मन अपार ।
ऐसीविनोदरूप मृगया है राज भूप,
देते इसे जो दोष जो जानों उन्हैं गवाँर ।

माढव्य-(रिससे) अरे! महाराज तो अपनी प्रकृतिमें प्राप्त हैं. और तू इस वनसे उस वनमें बहुत दौडता है, कहीं किसीदिन मनुष्यकी नाकके लोभी बूढे रीछके मुखमें न पडजाय ।

राजा-भद्र सेनापति ! यह आश्रमका निकट है, इसकारण मृगयाकी बड़ाई करनेमें हम तुम्हारा पक्ष नहीं लेसकते, आजतो ।

(झंझोटी कालिंगडा)

आजकरहुआनन्दमहिषगणसरनमाहिं निजशृंग हिलाई
तरु अन घनी छायामें हरिनी बैठी रोंथकरैं सुखपाई ।
शूकर निज अधखुले मुखनसे मोथन मूल खोदकर खाई ।
मम धनुकी प्रत्यंचा शिथिलितभई आज विश्राम कराई ।

सेनापति-महाराजकी जो इच्छा ।

दुष्यन्त-आगे जो कमनैत बढगये हैं उनको लौटालो और सेनावालोंको समझादो कि तपोवनमें कुछ विघ्न न करैं कारण कि,

(सोरठ)

दीजिय अभी बुझाय, सेनाके लोग जाय ।
देखोकिसी तपस्वीसे, बोलैं न वे रिसाय ॥
रहते हैं यदपि शान्त, ज्योंमणी सूर्यकांत ।
शीतल है जल उठेगी, सूर्यतेजको दिखाय ॥
तैसे ऋषी सुजान, हैं गुप्त तेजमान ।
पातेहि तिरस्कार, तेज प्रगटहो लखाय ॥

सेनापति-स्वामीकी जैसी आज्ञा ।

विदूषक-जा तेरा उत्साह दिवाना निरर्थक हुआ ।

(सेनापति गया)

राजा-(दासियोंकी ओर देखकर) तुमभी अपना यह मृगयाका वेश उतारडालो, हे रैवतक ! तुमभी अपनां कार्य सावधान हो करो ।

सबसेवक–महाराजकी जो आज्ञा. [सब गये]

विदूषक–आपने इस स्थानको मक्खियोंसे रहितकिया, अब इस शिलापर जो सुन्दर वृक्षकी छायामें है बैठिये तबतक मैं भी आनन्दसे बैठूं ।

राजा–तुम आगे चलो ।

विदूषक–आप आइये ।

(इस प्रकार दोनों जाकर बैठे)

राजा–माढव्य अभी तुझे नेत्रोंका फल नहीं मिला है, कारण कि तैंने देखने योग्य वस्तुको नहीं देखा है ।

विदू०--कारण कि मुझे महाराजका नित्य दर्शन होता है ।

राजा–अपनेकोतौ सभी अच्छा जान्ते हैं, परन्तु मैं तुझसे इस आश्रम की शोभा शकुन्तलाके विषयमें कहताहूं ।

माढव्य–(आपही आप) पर मैं इस कहनेका इनको अवसर न दूंगा (प्रगट) हे मित्र ! जान पडता है कि आप तपस्वीकी कन्याकी अभिलाषा करतेहो ' वह तो ' तुम्हारे व्याहनेयोग्य नहीं ।

राजा–मित्र ! पुरुवंशियोंका मन अलीन वस्तुपर कभी नहीं जाता ।

(जैजैवन्ती)

नाममात्रको प्रिया हमारी मुनिकन्या मनमान ।
जन्मतही तजगई अप्सरा वनमें उसे सुजान ।
दैवयोगसे कण्व महामुनि आ निकले तेहि ओर ।
पडी देखकर दया गोदले आये निज अस्थान ।
निज पुत्रीसम हितकर पाली बहुविधि लाड लडाय ।
ऐसीविधि मुनिसुता कहावै रूपराशि गुणखान ।

माढव्य–(हँसकर)जैसे किसीकी रुचि पिण्डखजूरसे हटकर इमलीपर लगे इसप्रकार तुम रनिवासकी स्त्रीरत्नोंको छोड उस तापसीके अभिलाषी हुए हो ।

राजा-जबतक तू उसे नहीं देखता तभीतक ऐसे कहता है।

माढव्य-जब वह आपको विस्मित करती है तो अवश्य मनोहर होगी।

राजा-(मुस्क्याकर) बहुत कहांतक कहूं।

(राग विभास)

कहा कहूं वाकी छवि भारी।
प्रथम चित्र जनु लिखो विधाता मूरतिफेर सँवारी।
अथवा सकल रूपवतियोंको कियो ध्यान इकवारी।
मूरति चित्रमाहिं जिय डारो इहिविधि बनी दियारी।
मेरे जान लक्ष्मी दूजी आश्रम माहिं पधारी।
देखतही अपनो सबकीनो तन मन धन बलिहारी।

माढव्य-जो ऐसा है तो उसके आगे सब रूपवती तुच्छ हैं।

राजा-मेरे मनमें तो ऐसीही है,।

(राग विभास)

सकल दोष विनरूप उजेरी।
सकल विश्वशोभा मथिडारी नहिं ऐसी कहुँ हेरी।
विन सूंघे जिमि पुष्प मनोहर रत्नवेध विनु जैसे।
विनु टूटी नवीन तरुकोपल विना स्वदित मधु तैसे॥
अथवा यह अखण्ड पुण्यनको फल जगमें अतिभारी।
केहि बडभागी देइ विधाता को कहिसके विचारी॥

माढव्य-तो तुम उससे शीघ्र विवाह करलो नहींतो हिंगोटके तेलसे चिकने शिरवाले किसी तपस्वीके हाथ यह अखण्ड पुण्यका फल लग जायगा।

राजा-वह परवश है और उसके पिता घर नहीं है।

माढव्य०-भला तुमपर उसका प्रेम कैसा है ?

राजा-तपस्वीकन्या स्वभावसेही सकुचीली होती हैं तोभी-

(काफी)

ऋषिकन्या स्वभाव सकुचीली॥

सम्मुख होय छिपावन चाही फिरी सुदृष्टि रसीली ।
सो न छिपायसकी मुसकाई रंग अनंग रँगीली ॥
लाजहेत नहिं सकी प्रगटकर प्रेमभाव गुणसीली ।
तौहू मदनदेवकी बाधा रही न गुप्त गहीली ॥

माढव्य-तो क्या देखतेही तुम्हारी गोदीमें आजाती ।

राजा--फिर जब चलनेलगी तो लज्जामें भी उसका प्रेमभाव दिखाई दिया कारण कि-

(राग खम्माच)

प्रीतिभाव कहा तोहि बताऊं ।
चलनलगी जब सखिन संग निज छुवो ठहर निजपाऊं ।
बोली चुभी दाभकी एनी ठहरो नेक हटाऊं ।
उरझ्यो वलकल वसन तरुनमें नेक याहि सुरझाऊं ।
यदपि न दाभ वसन नहिं उरझो मिस ताको समझाऊं ।
ठिठकि ठिठकि इमि बार बार तिय चितय रही मोघाऊं ।

माढव्य--तो अब यहां पथिकाईकी सामग्री संग्रह करलो मैं देखताहूं कि आपने इस तपोवनको उपवन करदिया ।

राजा-हे मित्र! किसी २ तपस्वीने मुझे पहँचानभी लिया है, विचार करो अब किस बहानेसे फिर आश्रममें जाऊं ?

माढव्य--आप राजाहो तुम्हें बहाँना कैसा कहो कि, हमको नीवार अन्नका छठा भाग दो ।

राजा-मूर्ख यह तो हमको औरही भागदेते हैं, जिससे हमारी रक्षा होती है, जिसके आगे रत्नोंके ढेर तुच्छ हैं देखो-

दोहा-अन्य वर्णसे लेतकर, जो नृप सो क्षय होय ।
तपसी तपका भाग षट, देते अक्षय सोय ॥

(नेपथ्यमें)

(अब हमारा मनोरथ सिद्धहुआ)

राजा--(कान लगाकर) अहो ! इस धीर और शान्त बोलसे तो यह तपस्वी होंगे ।

(द्वारपाल आया)

द्वारपाल--स्वामीकी जय हो यह दो ऋषिकुमार द्वारपर आये हैं ।

राजा--अभी लाओ देर मत करो ।

द्वारपाल--यह लाया (बाहर जाकर ऋषिकुमारोंके साथ आया) इधर आइये इधर आइये ।

(दोनों राजाको देखते हैं)

पहला ऋ० कु--अहो दीप्तिमान होकरभी इनके शरीरमें कैसी विश्वासता प्रतीत होती है,अथवा यह उचितही है कारण कि, यह राजा ऋषियोंसे भिन्न नहीं है ।

(राग देस)

बडा जो तेज धारेहैं, यही राजा हमारे हैं ।
नहीं मुनियोंसे ये कुछ कम,वसै वन मनको कर संयम ।
प्रजाके पालनेवारे, यही हैं इनके तपभारे ।
इन्हीकी स्वर्गमें चारन, करैं हैं कीर्ती गायन ।
इन्हैं ऋषिराजका पद है, इन्हीसे इन्द्रको मदहै ।
नहीं इनकी सदृश कोई, नहीं है और नहिं होई ।

दूसरा--हे गौतम ! क्या इन्द्रका सखा दुष्यन्त यही है ।

पहला--हां ! यही है ।

दूसरा--इसीसे तो ।

दोहा–श्यामोदधियुत भू सकल, भोगत इक नृपवर्य ।
नगरद्वार अर्गल सदृश, नहिं यामें आश्चर्य ॥
यहि बाहूबल धनुषबल, इन्द्रवज्रबल पाय ।
सुरतिय अरिकुलविजयकी,आशा करत सुखपाय १९॥

दोनों–(राजाके समीप जाकर) महाराजकी जय हो ।

राजा–(आसनसे उठकर) दोनोंको प्रणाम करताहूं ।

दोनों–आपके कल्याणहों. (फल भेंट करते हैं)

राजा–(प्रणामपूर्वक ग्रहण करके) तुम्हारी आज्ञा सुननेकी इच्छा है ।

दोनों–यह जानकर कि, आप यहां ठहरेहो आश्रमवासी कुछ प्रार्थना करते हैं।

राजा–क्या आज्ञा की है।

दोनों–हमारे गुरू कण्वऋषिके यहां न होनेसे राक्षस आनकर यज्ञमें विघ्न करते हैं, इससे सारथिसहित कुछ दिनोंतक आप इस आश्रमकी रक्षा करो।

राजा–यह तो बडी कृपा की है।

विदूषक–(सैन देकर) यह प्रार्थना तो आपके मनमानी हुई।

राजा–(हँसकर) रैवतक ! हमारी ओरसे जाकर सारथिसे कहो कि धनुषबाणके सहित हमारा रथ लावै।

द्वार०–जो आज्ञा (बाहर गया)

दोनों–(प्रसन्न होकर)

(राग आसावरी)

पुरुषनकी पालत सब रीती।
उनहींकेसे काज करतहो आश्रम धर्म रखत कर नीती।
शरणागत दुख दूरकरनको दीक्षित है पुरुवंश सप्रीती।
को नहिं जानै महिमा तुम्हरी छायरही जग पावन कीर्ती।

राजा–(प्रणाम करके) आप आगे चलो मैं भी आताहूं।

दोनों–सदा जय रहै (गये)

राजा--माढव्य ! क्या तेरे मनमें शकुन्तलाके देखनेकी इच्छा है ?

माढव्य--पहले तो बड़ी चाह थी पर अब राक्षसके नामसे तो बूंदमात्र-भी न रही।

राजा--डरनेकी क्या बात है ? हमारे निकट रहना।

माढव्य--यहीं मैं राक्षसोंसे रक्षितहूं।

(द्वारपाल आया)

द्वारपाल--महाराज ! रथ सजकर आगया है आपके विजय प्रस्थानकी

बाट जोहता है और माताजीका भेजाहुआ करभक दूत नगरसे कुछ संदेशा लेकर आया है ।

राजा--(आदरसे) क्या ? माजीका पठाया आया है ।

द्वार०--हां महाराज !

राजा--तो उसे लाओ ।

द्वार०--जो आज्ञा (बाहर जाकर करभकके संग आया) यह महाराज हैं सन्मुख जा ।

करभक--स्वामीकी जय हो--माताने आज्ञा दी है कि,आजसे चौथेदिन तुम्हारी वर्षगांठके कारण मेरा व्रत होगा, इससे उस समय तुम चिरंजीवीको भी अवश्य आना उचित है ।

राजा--इधर तपस्वियोंका कार्य उधर माताकी आज्ञा, दोनोंकाही उल्लंघन करना उचित नहीं, अब क्या करना उचित है ।

विदू०--अब तो त्रिशंकु बनकर मध्यमेंही ठहरे रहो ।

राजा--इस समय मेरे मनमें बडी दुविधा है ।

चौ०--दूर दूरपै कारज दोई ।
परे आय मन व्याकुल होई ॥
लांघन योग एकहू नाहीं ।
शोच होत यातैं मनमाहीं ॥
जैसे रुकत शिला पै जाई ।
नदी धार दुइ विध बटजाई ॥
तैसे भइ गत मोरे मनकी ।
क्या उपाय अब शंक मिटनकी ॥ १७ ॥

---

१ यह त्रिशंकु अयोध्याका राजा वसिष्ठसे कहने लगा कि मुझे ऐसा यज्ञ कराओ जो सदेह स्वर्गको चलाजाऊं उन्होंने कहा ऐसा यज्ञ नहीं होसकता तब वह वसिष्ठ पुत्रोंके पास गया और यही कहा, वे बोले तू गुरुवचनोंमें विश्वास नहीं करता इससे चाण्डाल होजा तब विश्वामित्रने प्रसन्न हो उसे अपने तपोबलसे स्वर्गमें भेजा वहां देवताओंको अपना फल सुनानेसे फिर नीचे गिरा विश्वामित्रने बीचमेंही रक्खा वह अबतक भूमि और स्वर्गके मध्यमें है उसकी छाया मगधदेशमें पड़ती है ।

हे मित्र ! तुझे भी तो माता पुत्र कहकर बोली है, सो तू नगरको जाकर मेरी ओरसे माताजीसे निवेदन करदेना कि मैं इस समय तपस्वियोंके कार्यमें लगा हूं, और तू उनके पुत्रकार्यका अनुष्ठान करना।

विदू०–यह तो सब होगा पर आप मुझे राक्षसोंसे डरा हुआ तो न समझ गये ।

राजा–(हँसकर) भला तुझमें भय कैसे होसकता है ।

विदूषक–तो अब जैसे राजाके छोटेभाई जाते हैं वैसेही मुझे जाना चाहिये ।

राजा–तपोवनका घेरा न होना चाहिये, इसकारण यह सब भीड़ भी तेरे साथ भेजता हूं ।

विदू०–तब तो मैं अब युवराज होगया ।

राजा–(मनमें) यह ब्राह्मण बडा चपल है कहीं रनिवासमें जाकर हमारा भेद न कह दे, सो अब इससे यों कहूं (विदूषकका हाथ पकड़कर, प्रगट) हे मित्र! केवल ऋषियोंका गौरव रखनेके लिये आश्रममें जाताहूं मैं सत्य कहताहूं कि तपस्वी कन्याकी मुझे चाहना नहीं है । देख–

(कलिंगडा)

कहँ तौ हम अरु कहां बाल वह जन्मी कानन आई ।
बड़ीभई हरनिनके सँगमें मैंनभेद किमि पाई ।
मन बहलानेके हित हमने तुमसे कथा सुनाई ॥
सो तुम सत्यरूप मति जानो अपने मन द्विजराई ॥

माढव्य–सत्य है (सब बाहर गये)

दूसरा अंक समाप्तहुवा ।

तीसरे अंकका विष्कम्भक ।

(स्थान तपोवन)

(ऋत्विज ब्राह्मणका एक चेला हाथमें कुशा लिये आया)

चेला–अहा ! राजा दुष्यन्तका कैसा प्रताप है कि, श्रीमान्के आश्रममें प्रवेश करतेही हमारे सब कर्म निर्विघ्न होनेलगे ।

दोहा–शरधारणकी क्या कथा, केवल ज्याटंकार ॥
हरत दूरतें विघ्न सब, तेहि धनुको हुंकार ॥ २ ॥

अब चलूं, ऋत्विग् ब्राह्मणोंको वेदीपर बिछानेके लिये यह कुशादेते हैं (घूमकर और आकाशकी ओर देखकर) हे प्रियम्वदा ! यह खसका लेप और नालसहित कमलके पत्ते किसके निमित्त लिये जाती है ?(सुनकर) क्या कहा ? कि, धूप लगनेसे शकुन्तला मुर्झागई है। उसको शांतिके निमित्त ठंढाई लिये जाती हूं, तो शीघ्र जा, सखि ! वह कन्या भगवान् कुलपति कण्वकी प्राण है । मैं भी यज्ञमंत्रका शान्तिकरनेवाला जल गौतमीके हाथ भेजूंगा ।

(गया)

इति विष्कंभक ।

अंक--३.

(कामियोंकीसी दशा बनाये दुष्यन्त आया)

राजा--(श्वास लेकर)

(कान्हरा वागेश्वरी)

अरे मन ! व्याकुल है क्यों परवश है वह बाल ।
जानतहूं तपकी प्रभुताई फिर न सकत जिय हाल ।
"भूमि निमानी जाय वारि ज्यों पीछे करत न चाल ।
सो गति भई मिश्र मोमनकी कह उपाय विनभाल" ॥

(कामकी बाधा निरूपण करता हुआ)

हे काम ! तुम और चन्द्र हम कामीजनोंके विश्वासघाती हो कारण कि-

(सोरठ काजिला)

तेहि कहत हिमांशु चन्द्र धीर ।
कुसुमायुधके फूलनके तीर ॥
हमें लगत असत तन देत पीर ॥ १ ॥
शीतल किरणोंमें भरी है अगन ।
फुल बान कठिन जिमि वज्र लगन ।
तोहिं दया न लगत कन्दर्प वीर ॥ २ ॥
"तव फूलनकी पैनी है अनी ।
शिव कोप अगिनि अजहूंलो बनी ।
वडवा जिमि दहकत सिंधु नीर ॥ ३ ॥
जो सत्य न होती बात मदन ।
किमि करत ताप इहिभांति वदन ।
मकरध्वज बाधत सब शरीर ॥ ४ ॥
तुम कल न देत एक घरी मार,
तो भी ये बडो उपकार कार ।
मदलोचनि हित निल होय चीर ॥ ५ ॥
करि नियम कियो तोहिं बलनिधान,
रतिराज कियो सब विफल मान ।
कीनो फर फरतन शर करीर ॥ ६" ॥ ३ ॥

(व्याकुलसा होकर इधर उधर फिरता है)

हाय! जब यज्ञ पूर्ण होजायगा तब मैं ऋषियोंसे बिदा होकर अपने दुःखी जीवको कहां बहलाऊंगा (लम्बी श्वास लेकर) प्रियाके दर्शन विना कोई मेरा धीर धरैया नहीं है अब उसीको खोजूं । (सूर्यकी ओर देखकर) इस कड़ी दुपहरीको प्यारी शकुन्तला सखियोंके संग कहीं मालिनीके किनारेकी लताकुंजोंमें विचरती होगी, अब वहीं चलूं (फिरकर और स्पर्शका निरूपण कर) अहो ! यह स्थान पवनसे कैसा सुहावना है "इन नई लताओंमें होकर प्रिया गई है कारण कि, जिन डालियोंसे फूल तोडे हैं उनका दूध अभी नहीं सूखा और कौदभी नहीं भराहै यह स्थान कैसा मनोहरहै ।"

दोहा-गन्धित सरसिज गन्धते, शित मालिनीतरंग।
लगत सुखद भल बात यह, दाही देह अनंग॥

(फिरकर और नीचेको देखकर) इन्हीं वेतोंके लतामण्डपमें कहीं प्यारी होगी कारण कि-

दोहा-यहि निकुंजके द्वारपद, चिह्नित पांडूरेत॥
भरनितम्ब एडी धसकि, आगिल उठे सहेत॥

अच्छा इन वृक्षोंमे देखूं (फिरकर और देखकर प्रसन्नतासे) अहा! अब मेरे नयन सफलहुए, उस पटियापर फूल बिछाये मनभावनी पौढी है, दोनों सखी सेवामें उपस्थित हैं, अब जो हो इनके एकान्तकी बातैं सुनूंगा (खड़ा होकर देखनेलगा)

(दोनों सखियोंसहित शकुन्तला दिखाईदी)

दोनों सखी-(प्रेमसे पंखा झुलातीहुई) हे सखि शकुन्तला! यह कमलके पत्तोंकी हवासे तुझे सुख होता है कि, नहीं?

शकुन्तला-सखियों! तुम मेरे पंखा क्यों करती हो?

(दोनों सखी दुःखसे परस्पर देखतीं हैं)

राजा-शकुन्तलाका शरीर बहुत अस्वस्थ दीखता है (विचारकर) तो-क्या? इसे धूपने सताया है? अथवा जो मेरे दशा है सो इसकी है (अभिलाषा करके) अथवा अब सन्देहसे क्या है।

(कालिंगडा)

हियपर लेप उसीर लगाये।
एकहाथमें कमलनालके,
शिथिलित कंगन शोभापाये।
जिय कछु दुखित तदपि तन मनहर,
ग्रीषम मदनताप सम पाये।
पर ग्रीषमको ताप पाय इमि,
नवतिय अँगनहिं लगत सुहाये।
निश्चय होत मदनने बलकर,
प्यारीके सब अंग तपाये॥

प्रियम्वदा–(हौले अनसूयासे) हे अनसूया ! जबसे उस राजर्षिपर शकुन्तलाकी दृष्टि पडी है तबसे उत्कंठितसी होगई है सो उसीके कारण तो इसको यह बाधा नहीं हुई ?

अनसूया–(हौले प्रियम्वदासे) सखी ! मेरे मनमेंभी यही सन्देह है, जो-हो इससे पूछना तो चाहिये (प्रगट) हे सखी ! तुझसे कुछ पूछना चाहतीहूं कारण कि, तेरा संताप बढता जाता है ।

शकुन्तला–(शयनसे अधीर उठकर) भला ! क्या पूछना चाहती हो ?

अनसूया–हे सखि शकुन्तला ! हम कामके कारण प्राप्तहुए व्यवहारोंको तो नहीं जानतीं, परन्तु कथाओंमें जैसी लगन लगे मनुष्योंकी दशा सुनी है, वैसी तेरी दिखाई देती है, सो बता तुझे यह रोग किस-कारण हुआ है, कारण कि मर्मके जानेविना कोई औषधिभी नहीं करसकता ।

राजा–जैसी मुझे आशंका है वैसीही अनसूयाको है, मेरे अभिप्रायके अनुसारही ज्ञान नहीं ।

शकुन्तला–(आपही आप) मेरी व्यथा तो भारी है, इससमयभी तुरन्त इनसे नहीं कहसकूंगी ।

प्रियम्वदा–हे शकुन्तला ! अनसूया भली कहती है तू अपने रोगकी क्यों उपेक्षा करती है, दिनपर दिन तेरे अंग दुबले होतेजाते हैं अब केवल स्वरूपकी छाया मात्र रहगई है ।

राजा–प्रियम्वदाने सत्य कहा ।

(ठुमरी)

प्रियम्वदाने प्यारीसे यह सच्ची बात सुनाई है ।
आनन छीन कपोल भये, मुख परछाईं पियराई है ॥
उर न उरोज कठोर रह्यो, दुबरी कटि अति दुबराई है ॥
कंधे दोउ झुकि आये हैं, रतिपतिने अधिक सताई है ॥
करुणाके योग्य तन प्यारीको दुबरी भइ नरम कलाई है॥
जिमि लू व्यथित चमेली वेली पत्र सहित मुरझाई है ॥

शकुन्तला--हे सखि! यदि तुमसे न कहूंगी तो किससे कहूंगी तुम दोनोंकोही कष्ट दूंगी ।

दोनों--इसीसे तो हम हठकर पूछें हैं, सुन प्यारी ! यह बात । हितू जनोंके सन्मुख कहनेही से कुछ दुःख बटजात ।

(जंगला)

राजा--अब बात कहेगी प्यारी ।

दुख सुख साथी सखी सयानी,
पूछत देह व्यथा दुख मानी ॥
अब सब छूटै आनाकानी,
संशय मिटै हमारी ॥ १ ॥
वार वार इन चाव दिखायो,
प्रेम सहित लख मोहिं जनायो ॥
तौहू मन नहिं धीरज पायो,
पायो कहा कहै उच्चारी ॥

(राग सहाना)

शकुन्तला--जियकी गति कहा कहूं अलीरी ।
जबते तपवनको रखवारो,
लखो भूलगई धाम गलीरी ।
मन तहँ गयो दशालै वोरी,
जिय न लखत कुछु बुरी भलीरी ।

राजा-(प्रसन्न होकर) सुननेके योग्यही सुना ।

(जिला)

राजा--वचन मनचीतो सुनपायो ।
जेहि मनसिज मो मन विकलायो,
वैसहि प्यारीको भरमायो ।
मनकि लगन नहिं वृथा होत है,
निश्चय अब आयो ॥ १ ॥

ग्रीषमके दिन बीतत जबहीं,
कारे बादर आवत तबहीं।
तापितके मेटत दुख सबहीं,
शीतल वरसायो ॥

शकुन्तला--सखियो! यदि यह बात तुमको रुचै तो अब ऐसा जतन करो जिससे वह राजर्षि मेरे ऊपर दया करै नहीं तो मुझे तिलाञ्जलि दो।

राजा--(स्वगत) इन बातोंसे तो मेरी सब शंका मिटगई।

प्रियम्वदा-(हौले अनसूयासे) हे सखि अनसूया! अब इसकी कामदशा बहुत बढगई है, इसमें समय लगाना उचित नहीं है और जिसपर इसका अनुराग है, वह पुरुवंशियोंका भूषण है, सो इसकी प्रीति बडाई के योग्य है।

अन०--यह सत्य है।

प्रियम्वदा--हे सखि! तेरा अनुराग बड़ाईके योग्य है, महानदी सागर को छोड़ कहां जायगी, कोमल कौंपलवाली माधवीको आमके विना कौन ले सकता है।

दुष्यन्त--जो विशाखा चन्द्रकलामें अनुवर्तिनी हो तो आश्चर्य क्याहै?

अनसूया--फिर अब क्या उपाय है? जिससे हंमं सखीका मनोरथ पूरा करसकैं और कोई न जानै।

प्रियम्वदा--मनोरथकी तत्काल सिद्धि तो सहज है, पर उपायका छिपा रहना कठिन है।

अनसूया--कैसे?

प्रियम्वदा--जबसे उस राजर्षिने इसमें स्नेहभरी दृष्टिसे अभिलाषा की है, तबसे वहभी रातोरात जागरन करनेसे दुर्बल होगया है। "इसीकी भांति दुर्बल देह सारी, नहीं यह प्यारके लक्षण पियारी।"

राजा--सत्य है ऐसाही होगयाहूं कारण कि--

शयन जब रातमें करताहूं जाकर,
पडैं सन्तापके आँसू भुजापर ॥

हुए भुजबन्दके सब रत्न फीके,
नहीं लगते मुझे सुखभोग नीके ॥
हुआ दुर्बल मेरा तन क्षीण दिन दिन,
सरक पड़ते हैं भूषण करके छिन छिन ।
न प्रत्यंचा कि ठहरै गूँथ पर यह,
सँभालेसे न सँभले हैं निडर यह ॥

प्रियम्वदा--(विचारकर) हे सखि ! इससे एक कामदशाका पत्र लिखाओ । और वह हम देवताके प्रसादके बहाने फूलोंमें छिपाकर राजाके हाथमें अर्पण करैं ।

अनसूया–हे सखि ! यह तेरा उपाय मुझे अच्छा लगता है, पर शकुन्तलासे बूझो वह इसमें क्या कहती है ।

शकुन्तला--तुम्हारी आज्ञामें क्या विचार है ?

प्रियम्वदा– तो अपनी दशाके अनुसार कोई सुन्दरसा छन्दभी बनादे ।

शकुन्त०--सखि ! छन्द तो मैं रचदूंगी पर मुझे भय है कि, वह उसे लौटा कर मेरा निरादर नकरे, इससे जी डरताहै ।

दुष्यन्त--(प्रसन्नतासे)

(राग खम्माच)

तू शंका जासो मनमानति ।
सो तेरे दर्शन अभिलाषी,
संगम हित उत्कंठा ठानति ।
अभिलाषीको रमा मिलत नहिं,
पर जेहि रमा मिलन मन आनति ।
सो नहिं दुर्लभ होत पियारी,
यह सब बात जगत जन जानति ॥

दोनों–हे अपने गुणोंकी निन्दा करनेवाली ! भला ऐसा कौन होगा जो शरीरके ताप दूर करनेवाली शरदकी चाँदनीको निवारण करनेके निमित्त अपने शिरपर वस्त्र तानेगा ।

शकुन्तला–(मुस्काकर) अच्छा मैं तुम्हारा कहना करतीहूं (सोचनेलगी)

राजा–(आपही आप) इससमय प्यारीको पलक बिसारकर देखनेका यह अवसर भला है।

(राग सहाना)

छन्द रचत कस लगत सुहाई।
फरकत होठ रोम भये ठाढे,
बंक भ्रुकुटी इक लीन्ह चढ़ाई।
गद्गद भये कपोल और मन,
ममहित प्रीति रही झलकाई॥

शकुन्तला–सखियो! छन्दका विषयतो सोचलिया पर लिखनेकी सामग्री नहीं है।

प्रियम्वदा–अपने नखूनोंसे तोतेके उदरके समान कोमल कमलके पत्ते पर लिख दे।

शकुन्तला–(यथोक्त सामग्री लेकर) सुनो! सखियो इस छन्दमें अर्थ बना कि, नहीं।

दोनों–हम सावधान हैं सुना।

शकुन्तला–बाँचती है।

(झंझोटीका जिला)

निर्दय तव मनकी नहिं जानत।
रैन दिवस मोहिं मैन तपावत,
मन अभिलाष मिलनकी ठानत।
यह तन काम तपाय सुखायो,
तुमने कहु मनमें नहिं आनत॥ १३॥

राजा–(झटपट आगे बढकर)

केवल तोहिं तपावत रतिपति,
पर प्यारी मम देह जरावत॥

दिन न बिगारत कान्ति कुमोदिनि,
शशिकी सबही कान्ति नशावत ॥

दोनों-(प्रसन्न होकर) बडी प्रसन्नता है कि, अपना मनोरथ शीघ्र सिद्ध होगया ।

[शकुन्तला आदरके निमित्त उठनेकी इच्छा करती है]

राजा-रहनेदो इतना परिश्रम मतकरो ।

(राग टोडी)

हैं अति कोमल गात तुम्हारे ।
ताप तपायो प्यारी तब तन,
पुष्पसेजके रह्यो सहारे ।
सरसिजकी पखुरिनकी गंधी,
छायरही तेरे तनु सारे ।
कष्ट सहनके योग्य देह नहिं,
पौढी रहो धीर उर धारे ॥ १९ ॥

अनसू०-महाराज ! शकुन्तलाके समीप इसी चट्टानपर विराजिये ।

(राजाके बैठने पर शकुन्तला लजाती है)

प्रियम्वदा-तुम दोनों युवाओंका परस्पर अनुराग तो प्रत्यक्ष है पर सखीका स्नेह मुझसे फिर कुछ कहलाया चाहता है ।

राजा-भद्रे ! जो इच्छाहो सो कहो, कारण कि, जो कहनेको मन चाहै और कहा न जाय वह मनमें ताप उत्पन्न करता है ।

प्रियम्वदा-आपका यह धर्म कहाहै कि, यदि प्रजामें किसीपर विपत्ति हो तो राजा उसे दूर करै ।

राजा-इससे अधिक राजाका कोई धर्म नहीं ।

प्रियम्वदा-तो इस हमारी प्रियसखीको बली कामने इस दशापर पहुंचा रक्खा है सो आपही इसके अवलम्ब हो कि, दया करके इसके प्राण बचाओ ।

राजा–भद्रे ! यह प्रणयें तो दोनों ओर तुल्य है, परन्तु सबप्रकार मुझीपर अनुग्रह है ।

शकुन्तला–(प्रियम्वदाको देखकर) सखी ! रनिवासके विरहमें उत्सुक राजर्षिको यहां क्यों विलमातीहो ?

राजा–प्यारी–

दोहा–मेरो मन तव वशभयो, वसन औरके मान।
यापर जो शंका करत, तौ सुन जीवनप्रान ॥
मन्मथ बाणन विधित तन, पुनि वेधत तू याय।
और नहीं तन रोम प्रति, तूही रही समाय ॥

अनसूया–महाराज ! हमने सुना है राजा बहुत रानियोंके प्यारे होते हैं, जिससे सखिके बन्धुजनोंको शोक न करना पड़े ऐसा आप निबाह करना।

राजा–हे भद्रे ! बहुत कहनेसे क्या है ।

(कलिंगड़ा)

बात न ऐसी कहो कुमारी ।
अधिक बडे रनिवासमाहिंमें,
दो कुलभूषण नारि विचारी ।
एक वसुमती अरु यह बाला,
जीवनदाता सखी तुम्हारी ॥

दोनों–तो अब हमारी चिन्ता गई ।

प्रियम्वदा–(अनसूयाको देखकर) हे अनसूये ! यह हिरनका बच्चा इधरको देखताहुआ कैसा अपनी माके ढूँढनेमें उत्सुक है, चलो उसे मिलादें ।

(दोनों चलती हैं)

शकुन्तला–आली ! मैं इकेली हूं, दोनोंमेंसे एक तो मेरे पास रहो ।

दोनों–इकली कैसेहै ? सब भूमिका रखवाला तो तेरे समीप है (गईं)

शकुन्तला–क्या दोनोंही गईं ।

---

१ अर्थात् जो तुम इसके प्राण रखनेको मुझसे कहतीहो तो मेरे प्राण रखनेको शकुन्तलासेभी कहो ।

राजा–प्यारी! व्याकुल मत हो यह जन तुम्हारी सेवा करनेको उपस्थित है।

(झंझोटी)

अब जनि शोच करहु मन प्यारी ।
कोमल सरसिजको पंखाकर, कहु तो करूं बयार तुम्हारी।
सियरी पवन लगैते श्रमकण, सूखहिंगे सुखपैहो भारी।
जावकलगे चरण अंकमधर, कहुतौ दाबूं हरु सुकुमारी।
सेवक जान वचन कछु बोलो, हे करिकरसम जंघावारी ॥

शकुन्तला–मैं बडोंका अनादर कर अपनेको अपराधिनी न करूंगी।

(उठकर चलनेको होती है)

राजा–प्यारी! अभी दुपहरी बड़ी कठिन है और तुम्हारे शरीरकी यह दशा होरही है।

(जिला)

प्यारी! असमय काहेजात।
कठिन दुपहरी परत सुन्दरी, ह्वै हैं तापित गात।
कुसुमसेज तजि जात धूपमें, उचित नहीं यह बात।
यह कमलनके पात धरे उर, कहां जात अलसात ॥

(हाथ पकडकर बैठाया)

शकु०–हे पुरुवंशी! नीतिका पालन करो, कामकी सताईहुई भी मैं स्वतंत्र नहीं होसकती।

राजा–हे भीरु! गुरुजनोंका डर मतकरो महर्षि कण्व धर्मको जानते हैं वह कुलपति इसमें तुमको कुछ दोष न देंगे।

(कलिंगडा)

मनमें भय जनि करहु पियारी।
यहि गन्धर्व रीतिसों बहुतिक, व्याहीगई ऋषिराजकुमारी
मात पिता मन हर्ष बढायो, कीनों तिनको आदरभारी ॥

शकु०–अच्छा! मुझे छोडो तो मैं फिर अपनी सखियोंसे कुछ कह आऊं।

दुष्यन्त–अच्छा! छोडदूंगा।

शकुन्तला–कब।

(जैजैवन्ती)

राजा- छांडदेहु इतनी मन करके।
जिमि कोमल सद पुष्प पायकर,
मधुकर अधिक प्रेममें भरकै।
मन्द मन्द मधुलेत बुझावत,
तनकी तपन पियारी अरकै।
तैसेहि अधर अछूत तुम्हारे,
मैं जब करिहौं पान सुधरकै।
यह सुख पाय प्रिया तोहिं छोडूं,
जाल कहां मम जिय मन हरकै॥

(शकुन्तलाका मुख उठाता है और वह वरजंती है)

(जैजैवन्ती)

शकुन्तला-जानदेहु मैं निपट अकेली।
बार बार बिनवत पिय तुमसे,
पास नहीं कोउ सखी सहेली।
(चलकर और फिर लौटकर)
यदपि रही पिय मनकी मनमें,
बातकरी दोइ पल मनमेली।
परवश जान छिमा तउ करियो,
जात न निजवश सत्य कहेली।
प्यारे मुहिं न विसारहु मनतें,
लाज राखियो बांह गहेली॥

(चलदी)

(दादरा)

राजा-कैसेहु विसरन योग पियारी।
दूरि भई हो भयो कहा है, मोमन तो तुम संगति धारी।
कितहू गुडी उडी रहै चाहो, डोर उडावनकर रहै सारी॥

१ यहांसे बलिहारी पदतक संस्कृतनाटकका विषय नहीं है।

शकु०-(आपही आप) राजर्षिकी बातै ऐसी हैं कि, जिनको सुनकर एक पगभी आगे नहीं चलाजाता तो इनके पाससे निठुर बनके कैसे चली जाऊं! अच्छा! इस पेड़की ओटमें छिपकर देखूं यह मुझे कैसा चाहते हैं।

(काफी)

राजा-जियको कौन भाँति समझाऊं।
प्रिया विना यह फूलवाटिका,
कंटक तुल्य ताप तन पाऊं।
बांह छुडाय गयी निर्मोही,
अनघैरी सम, अब कहँ जाऊं ॥
जिन प्रभु अस कोमल निर्मायी,
किमि हिय वज्र समान लखाऊं ॥

शकुन्त०-(आपही आप)

दोहा--प्रीतिमान अस पीयको, तजिकै कैसे जाउं।
सुनि सुनि बातैं प्रेमकी, आगे परत न पाउं ॥

राजा-(आपही आप) अब यहां रहकर क्या करूं? (चलता हुआ नीचे देखकर)अहा!अब तो ठहरूंगा यह प्राणप्यारीके हाथसे गिराहुआ कमलका कंकन मेरे निमित्त प्रेमका बन्धनरूप प्राप्तहुआ है, (उठाकर) अहा ! इसमें कैसी उसीरकी गंध आती है, इसके छूनेसे मन शीतल होता है क्यों न हों प्यारीके हाथकाही तो है ।

शकु०--(आपही आप) हाय! इस लगनसे देह ऐसी दुर्बली होगई है कि, हाथसे गिरा कंकणभी नहीं जाना!चलूं अब इसी मिससे फिर दिखाई दूं।

राजा-(देखकर) अहा ।

(झंझोटी)

इन नैननको भाग बड़ोई ।
जिमि सुरंक ढिग कमला आवत,
तिमि आवत मम ढिग प्रिय सोई ।

दरश पाय शीतल भइ छाती,
जिमि चातक स्वातिहि सुखहोई ।
जेहिको सत्य सनेह जासुपर,
सो पावत यह सत्य कहोई ॥

शकुन्तला-गिरा पहुँचेसे है कंकन,जु पायाहो तो देदो जी ।
करूं विन्ती तुम्हारी मैं, पसारूं अंचरा हो जी ।
तुम्हारे कामका नहिं कुछ, मेरी बहियां लगै सूनी ।
हँसी होगी चबैयोंमें, विचारो अपने मन सों जी ।

(जिला)

राजा--कंकण तब देहों मेरी प्राण अधार ।
अपने करन जब दो पहरावन, बाह गहौं सुकुमार ।
विनवत मिश्र जोरकर दोऊ, मानो वचन हमार ।
शकु०-टार सकत नहिं वचन तिहारे, पहरावहुभरतीर ।
राजा-आओ!विराजोशुभगशिलापर,तनमन डारौं वार।
शकु०--(बैठकर) वेग पहराओ पिय मोहिं,
डरलागे लखे न कोउ संगवार ।

राजा--(प्रसन्न होकर आपही आप) अहा ! अब मनोरथ पूरा हुआ जो प्यारीके मुखसे पिया शब्द सुना,धन्य कुसुमायुध! (पहनाता हुआ)अहा!

दोहा-हरित भई फिर वेलसी, कोमल प्यारी बाहिं ।
जिमि शिवक्रोध मदन मुयो,जियो अशीशहि माहिं॥

(प्रगट) प्यारी ! यह कंकण ठीक नहीं आता कहो तो फिरसे बनाके पहरादूं ।

शकु०—जैसा जी चाहै वैसा बनाकर पहरादो ।

राजा-(बनाता हुआ)

दोहा--प्यारी यह कंकण नहीं, याहि अर्धशशि जान ।
तेरी सुन्दर भुजनपर, बलिहारी कर प्रान ॥

(दादरा)

शकुन्तला-हमैतो पिया चन्द न परत लखाई।
करकमलनकी उडत महारज दृष्टिरही धुँधराई ॥
राजा-आज्ञा होय पवन निज मुखसे, सब रज देहुं उड़ाई।
श०(मुस्ककर)दयाकरहुपरतीततुम्हारीहोतनमोहिंपुरुराई
राजा-कहुं नवीन सेवककी तुमने प्यारी लखी ढिठाई।
शकु०--बातनमें को जीति सके तुम्हैं, कीजे जस मनभाई॥
राजा-(धीरेसे फूंक मारी)
शकुन्त०बस महाराज ! अब मेरी दृष्टि निर्मल होगई दीखनेलगा।

(पीलू काजिला)

पिया विनय केहिभाँति सुनाऊं।
एको गुण निजमें नहिं देखत, जेहि तुम्हरे मनभाऊं।
तुम्हरी सहज दया अति लखिकै, मैंमनमाहिं लजाऊं।
निजमुख दासी भई तुम्हारी, कहि अस तुम्है हँसाऊं॥

(कलिंगडा)

राजा--यहिते अँधिक और कहा प्यारी।
कीन्ही अधरसुधा सौरभसौं,
सबविधि पूरण साध हमारी।
प्राणप्रिया मुखचन्द्र तिहारो,
निरखत रहूं नित्य सुकुमारी।
यहिते अधिक न हमैं चाहिये,
तन मन बलिहारी बलिहारी।

(नेपथ्यमें)

(हे चकई ! अब चकवेसे न्यारी हो रात आई)

शकुन्तला--(कान लगाकर और सटपटाकर)
हे पुरुराज ! मेरे शरीरका वृत्तान्त जाननेके निमित्त भगवती गौतमी इस ओरही आती हैं, तुम तनक वृक्षकी आडमें होजाओ।

राजा-अच्छा (वृक्षकी ओटमें होजाता है)

(हाथमें कमंडल लिये गौतमी दोनों सखियों समेत आई)

दोनोंसखी–आर्या गौतमी ! इधर चलो इधर चलो ।

गौतमी–(शकुन्तलाके समीप जाकर) पुत्रि ! तेरे शरीरका ताप कुछ घटा कि, नहीं?

शकुन्तला–हां, कुछ घटा है ।

गौतमी–इस कुशके जलसे तेरा शरीर बाधारहित होजायगा (शिरपर कुशका जल छिडकती है) पुत्रि ! अब दिन छिपनेको है आ कुटीको चलैं । (चलती हैं) ।

शकुन्तला–(आपही आप) हे मन ! जब तेरे सन्मुख मनोरथ पूरे होनेका अवसर आया तब तो तैंने कातरता न छोडी, अब प्रियवियोगमें उस सन्तापसे तेरी क्यागति होगी ? (कुछ चलकर बोली) हे संताप हरनेवाली लताकुंज ! मैं तुझसे बिदा होतीहूं, फिरभी सुखभोगके निमित्त तुझे देखूंगी ।

[गौतमी और सखियोंके साथ शकुन्तला दुःखी होकर गई]

दुष्यन्त--(पूर्वस्थानमें आकर और श्वास लेकर) अहो ! मनोरथ सिद्ध होनेमें अनेक विघ्न होते हैं ।

(गौरी)

मन अब कहा वृथा पछताये ।
बार २ जबनिज अंगुरिनते,
प्यारीने दोउ होठ दुराये ।
मीठे वचन नहीं नहिं हितसों,
बोली अपनो मुख मुरकाये ।
ताही समय कुरंगलोचनी,
मुख उचकायलियो सुख पाये ।
पै अधरामृत पान करनको,
समरथ भयो न वैन सुनाये ॥

तो अब मैं कहांजाऊं अथवा प्यारीके भोगेहुए इसी लताकुञ्जमें एकमुहूर्तको बैठूं (चारों ओर देखकर)

(दादरा)

विन प्यारी मन थिर न रहाई।
फूलबिछी यह शिला सेज वहि,
अरु यह सरसिज पत्र लखाई।
जेहि पर मदन व्यथा प्यारीने,
नखसे लिख निज सखिन सुनाई।
यह मृणालको कंकण सोई,
करते गिरत जान नहिं पाई।
सूनी बेतकुंज लख अस यह,
हमसे तो अब त्यागिन जाई॥

(नेपथ्यमें)

(काफी)

राजन्- सन्ध्यासमय आय नियराई।
सवनकर्म आरंभ करन हित,
वेदी प्रज्वलित कीन सुहाई।
चहूँ ओरसे राक्षसगणकी,
छाया तेहिपर परत दिखाई।
सन्ध्यामेघ समान श्याम अरु,
पीत वरणकी है भयदाई।
त्रासदेत तपसिनको अतिही,
आय धनुर्धर करहु सहाई॥

दुष्य०-हे तपस्वियों मतडरो यह मैं आया (गया)

(तीसरा अंक पूर्णहुआ)

चौथे अंकका विष्कम्भक ।

(स्थान तपोवन)

(दोनों सखी फूल बीनती आईं)

अनसूया--हे सखि!प्रियम्वदा यद्यपि गन्धर्वविधिसे शकुन्तलाका विवाह हुआ और पतिभी तुल्यही मिला इससे तो मन प्रसन्न हुआ तथापि चिन्ता न मिटी ।

प्रियम्वदा--कैसे?

अनसूया--इससे कि आज वह राजर्षि तपस्वियोंका यज्ञ पूर्ण कराय ऋ-षियोंसे बिदा हो अपने नगरको गया है, वहां अन्त:पुरमें पहुंचकर जाने उसे यहांकी बात स्मरण रहै कि नहीं ।

प्रियम्वदा--विश्वास रक्खो ऐसे महात्मापुरुष विरुद्धस्वभावके नहीं होते पर चिंता तो यह है कि, पिता कण्व इस वृत्तान्तको सुनकर जानै क्या कहेंगे ।

अनसूया--जहांतक मैं देखतीहूं इससे सुखी होंगे ।

प्रियम्वदा--क्यों? ।

अनसूया--उनका संकल्प था कि, यह कन्या हम गुणवानको देंगे जो दैव स्वयंही ऐसा वर मिलाहै तो गुरुजन विना प्रयासही कृतार्थ हुए ।

प्रियम्वदा--(फूलोंकी टोकरीको देखकर) सखी ! पूजाके योग्य फूल तो मैं बीनचुकी ।

अनसूया--शकुन्तलासे सुहागदेवीकी पूजाभी तो करानी है,थोडे और बीनले

प्रियम्वदा--अच्छा (दोनों फूल बीनती हैं)।

(नेपथ्यमें)

हे ! यह मैं हूं ।

अनसूया--(कान देखकर) हे सखी ! यह किसी अतिथिकासा बोल है ।

प्रियम्वदा--क्या है ? शकुन्तलातो कुटीपर हैही (आपही आप) है तो परन्तु इससमय उसका चित्त ठिकाने नहीं है ।

अनसूया--चलो इतनेही फूल बहुत हैं।

(दोनों जाती हैं)

(नेपथ्यमें)

हे अतिथिका निरादर करनेवाली !

(चौपाई)

तपोधनी मोहिं सकल बखानत,
सन्मुख आत न तू मोहिं जानत।
जेहि अनन्यमन चिन्ता करई,
मन वच कर्म जाहि चित धरई।
सो जन नारि भूल तोहिं जाई,
समझाये सुधि करै न राई।
जिमि मदमत्त प्रथम की बानी,
करत स्मर्ण न जान सयानी॥

प्रियम्वदा--हा धिक् ! बुरा हुआ, किसी पूजनीयका अपराध बेसुधीमें शकुन्तलासे बनगया (आगे देखकर) यह तो कोई ऐसे वैसे नहीं यह महाक्रोधी दुर्वासाऋषि हैं इसप्रकार शाप देकर रिसभरे डिगमिगाते पैरोंसे शीघ्र २ लौटेजाते हैं, इनको छोड अग्निके सिवाय और किसमें भस्म करनेकी सामर्थ्य है।

अनसूया--तू जा. पावोंमें पड़कर जैसे बने मनाकर लौटाला, जबतक मैं इनके निमित्त अर्घ्य संजोतीहूं।

प्रियम्व०--अच्छा (चली)

अनसूया--(कुछ दूर चलकर गिरी) अहो! जलदी चलकर मैंने फूलोंकी टोकरीभी हाथसे गिरादी (फूल बीनने लगी)

(प्रियम्वदा फिर आई)

प्रियम्व०--हे सखि ! यह तो स्वभावसेही टेढे हैं सो किससे मान सकते हैं, पर तथापि मैंने कुछ सीधा करलिया है।

अनसूया–इनका थोडा माननाभी बहुत है, कह तो कैसे माने ।

प्रियम्वदा–जब फिरनेकी इच्छा नहींकरी तब मैंने प्रार्थना की, भगवन्! आपके तपप्रभावके न जाननेवाली इस कन्याका यह प्रथम अपराध है, इसको पुत्री विचारकर क्षमा करो ।

अनसूया–तब फिर ।

प्रियम्वदा–तब कहनेलगे कि, मेरी वाणी झूंठी नहीं होती, परन्तु जब राजा अपनी सुध दिवानेवाली अंगूठीको देखेगा तब शाप मिटजायगा यह कहकर अन्तर्धान होगये ।

अनसूया–तो अभी आश्वासनकी आशा है, कारण कि, जब वह राजर्षि चलनेलगा तो अपनी नामखुदी अंगूठी उतारकर सुध दिवानेके निमित्त शकुन्तलाको पहनादी थी, इससे शापनिवृत्तिका सहज उ-उपाय शकुन्तलापर है ।

प्रियम्वदा–चलो सखि ! अब देवकार्यसे निवृत हों (इधर उधर फिर कर और देखकर)

प्रियम्वदा–अनसूया! देख तो बायें हाथपर कपोलधरे चित्रकी समान प्यारी सखी बनरही है स्वामीकी चिन्तासे यह तो अपनेकोभी नहीं जानती दूसरे आगन्तुककी तो बातही क्या है ?

अनसूया–हे सखि ! यह शापका वृत्तान्त हम तुमतक ही रहै, स्वभावसे कोमल सखीकी इससे रक्षा करनी चाहिये ।

प्रियम्वदा–ऐसा कौनहोगा जो गरम जलसे नई मल्लिकाकी लहलही लताको सींचेगा (दोनों गईं)

इति विष्कम्भक ।

अङ्क--४.

(आश्रमका समीप)

चेला--महात्मा कण्व अभी परदेशसे आये हैं, मुझे समय देखनेकी निमित्त आज्ञादी है कि, रात कितनी शेष है? सो मैं बाहर देखनेको जाताहूं कि, रात कितनी है (इधर उधर फिरकर और आकाशकी ओर देखकर) अहा ! यह तो सवेरा होगया ।

(कालिंगडा)

प्रात कि कैसी प्रभा दरशाई ।
औषधिपतितो एक ओरको अस्ताचल शिखरनको जाई।
दूजी और सरोजाधिप रवि उदय होत कस तेज लखाई॥
दोउ तेजधारिनकी युगपत सम्पत विपत सुरीत सिखाई।
कैसेहु सुख दुख परे तदपि नरधीरज धार सहे कठिनाई ॥
अस्ताचलशशिगयो कुमुदिनिध्यानमात्र शोभा रहिछाई
देत न अबआनन्द दृष्टिको जिमिविदेश पतिका बिलखाई
दुःस्सह होत वियोग दुःख तेहि कैसे शोकहिप्रगट लखाई॥

(अहा !)

"जो निशिपति धरि पांव मेरुपै,
सब निशि विचरे हिय हरषाई ।
तम समूहको नाश किरण निज,
श्रीहरि धाम समीप लगाई ॥
तेजगवाँय गिरे नभते सोउ,
भोर समय रवि दियो दबाई ।
या जग मांहि बडेहु बडेनकी,
थिर सम्पति नहिं देत दिखाई ॥"

(अनसूया पटको उठाकर आती है)

अनसू०-(आपही आप) यद्यपि मैं संसारी बातोंको नहीं जानती, तोभी इतना तो मानतीहीहूं कि, उस राजाने शकुन्तलाके साथ अन्याय किया है ।

शिष्य--तो अब गुरुजीसे चलकर कहना चाहिये होमका समय हुआ।

(गया)

अनसूया--मैं उठीभी तो क्या हुआ, करनेयोग्यभी निज कार्योंमें मेरे हाथ पैर नहीं चलते, अब तो निर्दई कामकी अभिलाषा पूरीहुई, जिसने असत्यवादी शून्यहृदय राजाके वशमें हमारी सखीको डालकर इस दशाको प्राप्तकिया, अथवा यह दुर्वासाके कोपका विकार है, नहीं तो वह राजर्षि क्यों ऐसे वचन देकर फिर सन्देशपत्रभी न पठाता, अच्छा यहांसे (अभिज्ञान) सुध दिवानेवाली अंगूठी उसके पास भेजनी पड़ेगी परन्तु इन दुःखशील तपस्वीजनोंमें किससे कहूं, मैं यह जानती कि, शकुन्तलाका दोष है तो अभी तीर्थसे लौटेहुए पिता कण्वसे न कह सकती कि,राजा दुष्यन्तसे शकुन्तलाका व्याह होगया और वह गर्भवतीभी है तो अब इसमें हमको क्या करना चाहिये।

(प्रियम्वदा हँसतीहुई आई)

प्रियम्वदा--सखी! जलदी चलो शकुन्तलाकी बिदाका कार्य करैं।

अनसूया--तू क्या कहती है?

प्रियम्वदा--सुन जब मैं शकुन्तलाके समीप सुशयन (रातमें सुखसे सोई) पूछनेगई कि, इसी समय लाजसे नीचा शिर किये बैठीके समीप पिता कण्व आये, और हृदयसे लगाकर बोले पुत्रि! भाग्यकी बात है कि, धूमसे व्याकुल दृष्टिवालेभी यजमानकी आहुति अग्निमेंही गिरी, हे पुत्रि! योग्य शिष्यको विद्या देनेकी समान तुम अशोचनीया हो सो आजही ऋषियोंके संग तुमको पतिके समीप भेजदूंगा।

अनसूया--सखि! यह बात महात्मा कण्वसे किसने कहदी।

प्रियम्वदा-- अग्निहोत्रस्थानके निकटही छन्दोमयी अशरीरी वाणीने उनसे कहा।

दोहा--प्रगट होत शमिगर्भसे, जिमि पावक भगवन्त।
प्रजाहेत तव सुता तिमि, धरत तेज दुष्यन्त॥

अनसूया-(प्रियम्वदाको आलिंगन करके) सखि यह बात सुनकर तो मुझे बड़ा सुख हुआ, परन्तु शकुन्तलाका आजही बिदा होना विचार कर दुःख सुख समान होरहा है, साधारण सन्तोष है।

प्रियम्वदा-सखि हमारी चिन्ता सुखरूप होजायगी यदि हमारी सखी को सुख मिले।

अनसूया-इसीसे मैंने इस आमकी शाखापर लटकते हुए इस नारियलमें नित नई नागकेशरकी माला रक्खीथी, तू उसे उतारले, तबतक मैं भी उसके निमित्त मृगरोचना, तीर्थकी मृत्तिका दूर्वा किसलय मंगलके निमित्त लेआऊं।

प्रियम्वदा-यही कर।

(अनसूया गई और प्रियम्वदानें माला उतारी)

(नेपथ्यमें)

हे गौतमी ! शार्ङ्गरवमिश्रोंसे कहो कि शकुन्तलाको लेकर जानाहोगा।

प्रियम्वदा-(कान लगाकर) अनसूया शीघ्रताकर यह हस्तिनापुर जानेवाले ऋषि बुलायेजाते हैं।

(हाथमें सामग्री लिये अनसूयाका प्रवेश)

अनसूया-आओ सखि ! चलैं।

(इधर उधर फिरने लगीं)

प्रियम्वदा-(देखकर) यह देखो सूर्य उदय होतेही शिरसे स्नानकिये शकुन्तला बैठीहै प्रतिष्ठित नीवार हाथमें लिये स्वस्तिवाचन करनेवाली तपस्विनियां अशीश देरही हैं हमभी इसीके समीप चलैं।

(गई)

(ऊपर लिखी भाँति शकुन्तला आसनपर बैठी दीखती है)

एक तपस्विनी-(शकुन्तलाकी ओर देखकर) हे पुत्रि ! तू स्वामीसे बहुत मान पाकर महारानीपदको प्राप्त हो।

दूसरी-वत्से ! तू वीरकी माता हो।

तीसरी-पुत्रि ! तू पतिको बहुत प्यारी हो।

(इसप्रकार आशीर्वाद दे गौतमीके सिवाय सब गईं)

दोनों सखी-(समीप जाकर) हे सखि ! अच्छे स्नान हुए।

शकुन्तला–सखियों ! भली आई यहां बैठो ।

दोनों–(मंगलपात्र हाथमें लिये बैठकर) अच्छा सखि । सज्जित हो जब तक हम मङ्गलउपचारका उबटन करदें ।

शकुन्तला--यहभी बहुत है, कारण कि, अब तुम्हारा शृंगार मुझे दुर्लभ होजायगा ।

(आँशू डालदिये)

दोनों–सखि ऐसे ! मंगलकार्यमें तुझको रोना उचित नहीं है ।

(आंशू पोंछकर वस्त्र पहराती हैं)

प्रियम्वदा--सखि ! तेरा सुन्दररूपतो अच्छे २ आभरणोंके योग्य है, परन्तु जो आश्रममें वल्कलादि मिलसक्ते हैं, उन्हींसे शृंगार करती हैं पर इनसे रूप बिगडता है ।

(दो ऋषिकुमार हाथमें वस्त्राभूषण लिये आते हैं)

दोनों ऋषिकु०–यह भूषण वस्त्र हैं भगवतीजीको पहराओ ।

(सब देखकर चकित होती हैं)

गौतमी--बेटा नारद ! यह सब कहांसे आये ।

पहला--पिता कण्वके प्रभावसे ।

गौतमी--क्या मानसी सिद्धिसे प्राप्तहुए ।

दूसरा–नहीं सुनो जब भगवान् कण्वने हमको यह आज्ञा दी कि, शकुन्तलाके निमित्त वनस्पतियोंसे फूल लेआओ, तब तुरन्तही–

(विभास)

अस प्रभाव मुनिवरको भारी ।
मङ्गलीक शशिसम अति निर्मल,
काहू तरुवर दीन्ह सुसारी ।
चरण शृँगार हेत केहु तरुवर,
दियो महावर मंगलकारी ।
वनदेवन औरै बहुतेरे,
भूषण, वसन दिये सुखकारी ।

पहुँचे तक तिनकर अस दीखे,
जिमि नवशाखा तरु सुकुमारी ॥

प्रियम्वदा-(शकुन्तलाको देखकर) वनदेवियोंसे वस्त्राभरण मिलनेके शकुनसे यह सूचित होता है कि, तू स्वामीघर राजलक्ष्मी भोगैगी ।

(शकुन्तला लजागई)

पहला ऋषिकु०-गौतम ! आओ आओ स्नानकर आयेहुए मुनिवरसे यह वनदेवियोंके सत्कारका वृत्तान्त वर्णन करैं ।

(दोनों गये)

दोनों सखि-हे अली ! हम भूषण वस्त्रोंको क्या जाने, पर चित्र-विद्याके बलसे तेरे अंगोंमें पहनाती हैं ।

शकुन्तला-तुम्हारी चतुरता मैं जानती हूं (दोनों शृंगार करनेलगीं)

(स्नान किये कण्वका प्रवेश)

(ललित)

कण्व०-प्यारी बेटी आज जाय प्रीतमके भवन ।
चित्त है उदास आज कंठ रुकै बार बार,
धीरजके राखबेको कौन है जतन ।
नयनोंमें नीर भरै चित्त नहीं चैन लहै,
धुंधसी दृष्टि भई पुत्रिका गमन,
हमसे वनवासी जब प्रेमसे अधीर होत ।
बेटीकी बिदाको दुख कैसे फिर गृहीके तन ।
लाड़हू लडाय पालपोसके बढ़ायोजाय,
आज एक साथ हाय ! परीहै तजन ॥

(मन बहलानेके निमित्त इधर उधर टहलने लगे)

दोनों स०-प्यारी ! हम शृंगार करचुकीं अब यह क्षौमवस्त्रका जोड़ा पहरो ।

(शकुन्तला पहरती है)

गौतमी०—बेटी ! यह नेत्रोंमें आनन्दके आँशू भरे तेरे पिता तुझे देखने आते हैं सो तू इन्हे आदरसे ले ।

शकुन्त०—(लज्जापूर्वक) पिता ! प्रणाम करती हूं ।

कण्व०—पुत्रि !

दोहा—नृप ययातिकी जिमि भई, शर्मिष्ठा प्रिय नारि ।
पतिव्रता तिमि होय तू, पतिको प्राण अधारि ॥
जिमि तिन पायो पुरुसुवन, चक्रवर्ति गुणमूल ।
तिमि उपजहि तेरो सुवन, हरन सकल जगशूल ॥

गौतमी०—भगवन् ! यह तो बर है अशीश नहीं ।

कण्व०—पुत्रि ! आओ तत्काल आहुति दीहुई अग्नियोंकी प्रदक्षिणा करलो।

(सब परिक्रमा करती हैं)

कण्व०—(ऋकू छन्दसे अशीश देते हैं)

(देश)

यह जग पावनि अगिनि सुहाई ।
वेदीके चहुँ ओर विराजित, तटपर दर्भ बिछाई ।
समिध पाय प्रज्वलित भइ भारी, हविष गन्ध सरसाई ।
नाशत अघ सबके सो तुमको, शुद्ध करै सुखदाई ॥

सो अब तू शुभघड़ीमें बिदाहो (चारों ओर देखकर) जो संगमें जांयगे वह मिश्र कहां हैं ।

शिष्य—(आकर) मुनिजी ! हम यह हैं ।

कण्व०—अपनी बहनको मार्ग बताओ ।

शार्ङ्गरव—इधर आओ भगवती ! इधर आओ ।

(सब चलते हैं)

(विहाग)

हे हे आश्रमके सब तरुवर !
आज शकुन्तला पतिपुर जाई ।

जेहिने सींचेबिना तुम्हारे,
कहुँ जल पान कियो नहिं राई ।
अभरणकी रुचि तदपि तुम्हारे,
फूलन लिये प्रीति अधिकाई ।
फूलत फलत निहारि तुम्हें जिन,
सुवन समान मोद मन पाई ।
आयसु देहु जात पतिके घर,
तुमसे चाहत होन बिदाई ॥

(कोकिलाका बोल बताकर)

यह देखो-

दोहा--वनवासिनके बन्धु यह, तरुवर पुत्री हेत ।
कोकिलशब्द सुनायकर, गमन आज्ञा देत ॥ ९ ॥

(नेपथ्यमें—राग काफी)

याको मार्ग होहि सुखकारी ।
हरित कमलिनी छाये सरवर ठौर २ पावै सुकुमारी ।
सरसनदी अरु सघन वृक्ष सब मिलैं मार्गमें तनश्रम हारी ।
कमलपुष्परज सदृश मृदुल अति भूमि मिले तुम्हैंमगसारी
शान्तऔरअनुकूलसबहिविधिगन्धबहाहोअभिमतचारी

(सब विस्मय होकर सुनते हैं)

गौतमी–हे बेटी ! जातिजनोंकी समान हित करनेवाली तपवनकी देवियें तुझे अशीश देती हैं इन्हें प्रणामकर ।

शकुन्तला–(प्रणाम करके हौले प्रियम्वदासे)

(असावरी)

सखि री मेरो आगे परत न पाँउ ।
आर्यपुत्रसे यदपि मिलनको है मनमें अतिचाँउ ।
तदपि बडीभई एती जेहिवन तेहि तज कैसे जाँउ ।
प्रिय०-आली नहीं इकेलो दुख तोहिहै यह लखि पछताँउ ।
ज्योंज्यों समय वियोग निकट चालि आवतमन अकुलाँउ ॥

सकल तपोवन छई उदासी देख तोहि दिखराउँ।
मृगी न लेत कवल मुखमाहीं अब वन नचत न मोर।
पीरेपात गिरत अँशुअनसे करत न कोकिल शोर॥

शकु०--(सुध करके) पिता! मैं इस वनज्योत्स्नासे भी भेट लूं इसमें मेरा बहनकासा प्रेम है।

कण्व--इसमें मैं तुम्हारे सहोदरकेसे प्रेमको जानता हूं, यह माधवीलता दाहिनी ओर है।

शकुन्तला०--(लताके समीप जाकर)।

(रागकाफी)

हे वनकी छबिदाता बेली!
यदपि माधवी आमवृक्षसे लिपटरही मम तदपि सहेली।
शाखारूप पसारभुजानिज मिलले अति सुखदान नवेली।
फिर संगम दुर्लभ मनमानत दूरजायहौं पडूं अकेली॥

(विहाग)

कण्व--बेटी! जैसा पति तेरे हितमें संकल्प कियो मन माहीं।
तैसे तैं पायो प्रियभर्ता अपने पुण्य प्रताप लखाहीं॥
अस यह नवमल्लिका आम सँग लिपटरही मनुदेगलबाँहीं॥
मैं निचन्त अब भयों लाडली तुम दोऊइकसंग बिवाहीं॥

पुत्रि। देर मतकर अब बिदाहो

शकुन्तला--(दोनों सखियोंसे) हे सखियो! इसे मैं तुम्हारे हाथ सौंपति हूं।

दोनों--और हमे किसको सोंपजाती हैं? (आँसुओंसे रोती हैं)

कण्व--अनसूये! इस समय रोना उचित नहीं है, इस समय तो शकुन्तलाको धीरज बँधाना चाहिये।

(सब चलते हैं)

(रागविहाग)

शकुन्तला--पिता कुटीके निकट चरति जो,
हरिनी गर्भभार अलसाई।

क्षेमकुशलसे जनै जबै तुम,
समाचार मोहिं देहु पठाई ।
भूल न जैयो विनय करत हूं,
एहिमें नेह मेरो अधिकाई ॥

कण्व-बेटी! तुम्हैं हरिनी जब ब्यावै समाचार देहौं पहुँचाई।

शकुन्तला--(कुछ चलकर और देखकर) यह कौन है ? जो मेरा अंचल नहीं छोडता ।

(कलिंगडा)

कण्व-अहै वही मृगछौना तेरो।
जब जब चिरो दाभते यहि मुख,
व्रणित भयो पुत्री तैं हेरो ।
तब तब तेल हिंगोट लगायो,
लाड लडाय लडाय घनेरो ।
समा खवाय खवाय पुत्र सम,
पालनकर सब कष्ट निबेरो ।
सो अब किमि तज सकत सुता तोहिं,
भयो तेरो चरणनको चेरो ॥

शकुन्तला-धीरजधर मनमें मृगजाये ।
अनतजात मैं संग छोड अब,
पाछे क्यों आवत अकुलाये ।
तव जननी जनमत तज तोहिं मरी,
पालमें लाड लडाये ।
मोपाछे अब पिता हमारे,
तोहिं पालि हैं नेह बढाये ।
पाछे लौटि जाहु मृगछौना,
मानत नहिं काहे समुझाये ॥

(आंशू गिराती चलती है)

(चौपाई)

कण्व-धीरज बांध हिये सुकुमारी ।

परवशशोक विलोचन वारी ॥
उन्नत वरुनी दृगसे आई,
लखनहोहि नहिं पंथ सुहाई ।
ऊंची नीची भूमि लखाई,
ठोकरखान गिरो कहुँ जाई ॥

शार्ङ्गरव-भगवन् ! सुनाजाता है कि, जहांतक जलाशय न मिलै वहीं तक प्रियजनोंको पहुंचाना चाहिये । अब यह सरोवरका तट है यहां संदेशा देकर आप लौटजाँय ।

कण्व--तो आओ थोडी देर इस वटकी छायामें विश्राम लें ।

(सब वृक्षके नीचे बैठते हैं)

कण्व-(आपही आप) श्रीमान् राजादुष्यन्तके योग्य क्या संदेशा भेजना चाहिये (विचारनेलगे)

शकुन्तला-(सखियोंसे-हौले हौले)
हे सखि ! देख कमलिनीपत्रमें छिपजानेपरही प्रिय चकवेके निहारे विना व्याकुल हुई यह चकवी विलाप करती है मैंने बड़ा कठिनकार्य किया है ।

अनसूया-सखि ! ऐसा मत कह ।

दोहा-यहु वियोगकी बडिनिशा, काटत विन पियसंग।
मेटत कछु दुख विरहको, पुनि फिर मिलन उमंग॥१९॥

कण्व-हे शार्ङ्गरव! शकुन्तलाको आगे करकै हमारी ओरसे राजादुष्यन्तसे यों कहना ।

शार्ङ्ग०-जो आज्ञा ।

(राग जैजैवन्ती)

कण्व--जानि हमें तपधनी नृपति भारी
अपनोहू कुल उच्च विचारी ।
हुई प्रीति जो स्वयं दैववश,
इस कन्याकी ओर तुम्हारी ।

ताहि शोचकर सब रानिन सम,
राखो बेटी यह हमारी ॥
बस कहनो यह अधिक बात यहि,
हैहै भाग्य अधीन सुखारी ।
सो न उचित हम वधू बन्धुजन,
ताको मुखसे कहै उचारी ॥

शार्ङ्ग०--आपका संदेशा मैंने भलीभांति ग्रहण करलिया ।

कण्व--बेटी ! अब तुझेभी कुछ शिक्षादूंगा यद्यपि हम वनवासी हैं तथापि लोक वृत्तान्त भलीभांति जान्ते हैं ।

शार्ङ्ग०--बुद्धिमानोंसे क्या छिपा है ।

कण्व--बेटी ! जब तू यहांसे जाकर पतिकुलमें प्राप्त हो तब-

(अरल)

गुरुजनकी सबभांति करो सेवा मनलाई ।
सौतनसे तजि द्वेष सखीसम प्रीति बढ़ाई ॥
भर्ताके अपमान किये तो रोष न कीजो ।
कटुकवचनको त्याग नित्य आदर तेहि दीजो ॥
परिजनके प्रति सदा मिष्टवाणी उच्चारो ।
मैं महारानी भई गर्व यह मन मतिधारो ॥
"पतिको देवसमान सदा मनमाहिं विचारो ।
सबविधि सेवहु ताहि दोउकुल सुमति उधारो ॥
पीछे सोवहु नित सबहीसे पहले जागो ।
करि सब विधि सन्मान पती चरणन अनुरागो"
वर्तत इमि कुलवधू श्रेष्ठ गृहिणी कहवावैं ।
चलें जो उलटी चाल दुहूंकुल दोष बढावैं ॥
कहो गौतमी पुत्री हित यह शिक्षा कैसी ।

गौत०--कुलवधुओंके निमित्त कही चहिये कहि तैसी ॥
पुत्री इसको सदा ध्यानमें राखो मनकर ।

कण्व-बेटी-आ मुझसे अरु निज सखियोंसे भेट अंकभर।

शकु०--हे तात ! क्या यहींसे प्रियम्वदा और अनसूया मेरी सखीं लौट जांयगी ?

कण्व०--बेटी ! यह दोनों अभी क्वारी हैं इससे इनका वहां जाना उचित नहीं गौतमी तेरे संग जायगी ।

शकुन्तला--(पितासे मिलकर) अब मैं पिताकी गोदीसे न्यारी होकर मलयपर्वतसे उखाडी हुई चन्दनलताकी समान देशान्तरमें कैसे प्राण धारण करूंगी ?

(रागकाफी)

"पितुकी गोद बहुरि कब पै हौं।
जिन पाली पोषी अति हितसौं,
तिनको त्याग कौन विधि जैहौं ॥
पितु गृह परिजन, प्रियजन सखिजन,
छुटत सबै यह दुख केहि कैहौं।
तजत अकेली हाय ! पिता मोहिं,
इकली केहिविध धीर धरैहौं"

कण्व--बेटी ! ऐसी व्याकुल क्यों होती है ।

बेटी धीर मनमें धारि ।
जाय घर यशवन्त पतिके होइ है प्रियनारि ।
मिलै नहिं अवकाश जब गृहकाजसों सुकुमारि ॥
दिशा पूरव जनत जिमि रवि सुवन मंगलकारि ।
जनहिंगीजब पुत्र ऐसो जगतको उजियारि ॥
तब विरहकी व्यथा हमरे भूलि जैहै सारि ।
लहत सबही नारि यह दुख नेक मनहिं विचारि ॥

(शकुन्तला पिताके पैरोंमें गिरती है)

कण्व०--मेरे आशीर्वादसे तेरे मनोरथ पूरे होंगे ।

शकुन्तला--(दोनों सखियोंके पास जाकर)आओ सखियो ! दोनों एक संगही मुझसे मिललो ।

दोनों-(भेंटकर) हे सखि ! यदि राजा तुझे न पहचाने तो यह मुंदरी जिसपर उसका नाम खुदा है दिखादेना ।

शकुन्तला-तुम्हारे इस सन्देहने तो मुझे कम्पित करदिया ।

दोनों--डरनेकी बात नहीं अधिक स्नेहमें अनिष्टका सन्देह होता है ।

शार्ङ्ग०--अब दिन पहरसे अधिक चढगया चलनेमें शीघ्रता करो ।

शकुन्तला-(आश्रमकी ओर मुखकर खडी होती है, हे पिता ! अब तपोवनके दर्शन फिर कब कराओगे ?

कण्व-बेटी सुन जब फिर आश्रम तू आवैगी ।
सागरपर्यन्तभूमि सौत मानि पीयनेह,
सबविधि समरत्थ पुत्र धीर वीर पावैगी ।
रथको नहिं वेग रुके जाके जगमाहिं कहूं,
ताको कर व्याह वधू देख चित चावैगी ।
राजकाज सौंप ताहि पालन कुटुम्बभार,
शान्त हो पतीको फिर आश्रममें लावैगी ॥

गौतमी--बेटी!चलनेकी घडी बीतीजाती है पिताको लौटजानेदे मुनिराज! अब लौटो यह तो बारबार ऐसेही कहती रहैगी ।

कण्व०--बेटी ! मेरे तपोनुष्ठानमें विघ्न पडता है ।

शकुन्त०-(फिर मिलकर) पिताजी! तुम्हारा शरीर तपस्यासे पीडित है सो मेरे निमित्त बहुत उत्कंठित न होना ।

कण्व-(स्वाश्वास लेकर)

(खम्माच)

मम दुख यह केहि भांति नसै है ।
पूजाहेतु कुटीके द्वारे,
बुए धान्य दृष्टिजब जैहै ।
तब नीवारबली अवलोकत,
जियवियोग दुख अति अधिकैहै ।
तब विछुरनकी व्यथा बढै नित,
पुत्री हित पितु सुख कब पैहै ॥

अब जा तेरा मार्ग मंगलकारीहो।

(शकुन्तला साथियोंसमेत चलती है)

दोनोंसखी (शकुन्तलाकी ओर देखकर)-(विहाग)

भई अब नैननिसो सखि दूरि।
लीनो वृक्ष दुराय सखीको,
नहिंदीसत पगधूरि।

कण्व-(श्वासलेकर) अनसूये गइ सखि तुम्हारी,
मेरी जीवन मूरि।
शोक त्याग मम पीछे पीछे,
आओ मनकरि कूरि॥

दोनों-पिता सखीके विना तपोवन,
रह्यो विरह भरिपूरि।
सूनो लगत चलैं हम कैसे,
चर अचर रहे विसूरि॥

कण्व--सत्य है प्रीतिमें ऐसाही दीखताहै (ध्यानकर चलतेहुए)आज शकुन्तलाको पतिके घर भेजकर मैं निश्चिन्तहुआ।

(चौपाई)

बेटी होत पराये घरकी।
चिन्ता लगी रही सम वरकी॥
सो अब तेहि पितुगेह पठाई।
मनमें इमि पाई निचिताई॥
जिमि काहूकी देइ धरोहर।
होय विमल मन सब विधि सुखकर॥

(सब बाहरगये)

चौथा अंक समाप्त हुआ।

अंक-५.

(स्थान राजभवन)

(दुष्यन्त राजा आसनपर स्थितहै विदूषक सामने खड़ा है)

विदूषक-(कान लगाकर) हे मित्र ! संगीतशालाकी ओर कानलगाओ कैसा मनोहर स्वरोंसे गीत सुनाई देता है, मैं जानता हूं श्रीमती हंसपदिकारानी गानेका अभ्यास कररही हैं ।

राजा-चुप रहो सुनने तो दो ।

(नेपथ्यमें)

(सहाना)

भ्रमर तुम अभिनव मधुके मीत ।
सरस आमकी मृदुल मंजरी, तासों राखी रीत ।
नित चुम्बन हित आवत तेहि ढिग, अधिक बढाई प्रीत ।
अब सरोजवश ताहि भुलायो, बहु दिन गये व्यतीत ।
मिश्र तिहारी दशा देख यह होत न जिय परतीत ॥

राजा-अहा ! कैसा प्रीति उपजानेवाला राग है ।

विदू०-आप इन गीतोंका अर्थभी समझे ?

राजा-(मुसक्याकर) हां समझा रानी हंसपदिका पर मैं पहले आसक्त था,अब वसुमतीमें प्रेम है, इसकारण रानी मुझे उलाहना देरही है मित्र माढव्य ! हमारे वचनसे रानी हंसपदिकासे कहो कि,हम तुम्हारी चेतावनीको जानगये ।

माढ०-जो श्रीमान् आज्ञा देते हैं (उठता है) हे मित्र ! जिसप्रकार अप्सराके हाथसे तपस्वीका छुटकारा कठिन होताहै ऐसेही मेरी दश होगी वह सखियोंसे चोटीपकड़वाकर मुझे पिटवावेगी ।

राजा-जा चतुराईसे उसे समझादेना ।

माढ०-जाने मेरी क्या गतिहोगी ? (गया)

दुष्यन्त–(आपही आप) यद्यपि मुझे किसी प्रेमीका वियोग नहीं है तो भी गीतके सुनतेही अकस्मात् चित्तमे उत्कंठा हो आई इसका क्या कारण है ? अथवा ।

(झंझोटी)

जियमें यह जान परत हमको सब कारन ।
भली वस्तु देख कोइ अथवा सुन राग सरस,
सुखियन मन एक संग उत्कंठाकर धारन ॥
पूर्वजन्मके स्नेह बंधुनको संस्कार,
देत सुध दिवाय सबै प्रेमके पगारन ॥

(व्याकुलतासे बैठता है)

(कंचुकी आताहै)

कंचुकी--अहा ! इससमयमें किस दशाको पहुंचाहूं ।

(राग ईमन)

यह लाठी जो द्वारपालके,
काम काज हितकी धारन ।
रनवासीको काम निकारे,
अब सब बीतचले कारन ।
डगमग बूढे चरनोंको अब,
बनी सहारा सोई है ।
हाय बुढापेने अब आकर,
अक्किल सारी खोई है ॥
"कहन चहत जो कहत बनै नहिं,
भूलिजात है कहत कहत ।
छिनभर रहत न वृत्ति एकसी,
तनको मन नाहिं धीर रहत ।"
यह तो सांची महाराजके,
धर्मकाज सब करन परत ।

पर धर्मासनसे वह उठकर,
अभी गये विश्राम करत।
तासे उचित नहीं अस कहिबो,
कण्वके चेला आये हैं।
विघ्न पडै विश्राम स्वामिके,
अबहीं तो पौढाये हैं।
अथवा प्रजापालको बोझा,
जिन अपने शिरधारो है।
तिनको फिर विश्राम कहां यह,
मुनियन सत्य उचारो है।
एकहि बार जुते रविके रथ,
घोडे नितप्रति चलते हैं।
करत नहीं विश्राम एक छिन,
पवन सदा गति करते हैं।
शेषनाग नित धरत भूमिको,
कबहूं करत नहीं विश्राम।
तिही भांति राजनकी शोभा,
यही करैं नितप्रति जनकाम॥

अब मैं इस संदेशेको भुगताताहूं (इधर उधर देखकर) महाराज वे बैठे हैं।

पुत्रसमान पाल परजाको,
जब राजा थकजाते हैं।
तब एकान्त स्वस्थकेकारण,
इच्छा प्रकट जनाते हैं।
जिमि सब यूथ सघन वनमाहीं,
जब गजराज देत पहुँचाय।

रविके धूप तपनके कारण,
ढूंढत आप ठंढ कहुं जाय ॥

(समीप जाकर)

महाराजकी जय हो । यह हिमालय पर्वतकी तराईके रहनेवाले कुछ तपस्वी कण्वमुनिका संदेशा लेकर स्त्रियोंसहित आये हैं उनके निमित्त जो आज्ञाहो ।

राजा–(आदरसे) क्या कण्वका संदेशा लाये हैं ।

कंचु०–हां महराज !

राजा–तो हमारे वचनसे जाकर उपाध्याय सोमरातसे कहो कि,इन आश्रमवासियोंका वेदविधिसे सत्कार करके स्वयं प्रवेशकरावे और मैंभी तब तक तपस्वियोंसे मिलनेयोग्य स्थानमें बैठताहूं ।

कंचुकी–जो आज्ञा महाराजकी–(गया)

राजा–(उठकर) वेत्रवति ! अग्निस्थानकी गैल बताओ ।

प्रतिहारी–महाराज ! यह मार्ग है ।

राजा–(इधर उधर फिरकर अधिकारका खेद निरूपण करके) सबही अपनी मनोकामना पाकर प्रसन्न होजाते हैं, पर राजाकी कृतार्थता दुःखभरी होती है ।

(राग ललित)

राज पाय मनकी अभिलाषा,
पूरी तो होजाती है ।
राज पाय पालन दुखदाई,
नित मनमें यह आती है ।
हाथ हमारे रहै कौन विधि,
यह चिन्ता मनमें नित जागै ।
श्रमहित शयन न होत खेदसे,
कबहूँ नैनन नींद न लागै ।
जिमि छत्रीको दण्ड लियेकर,
देत भार अरु धाम बचाई ।

तिमि यह राज्यभार प्रदहू अरु,
दीसत है जनको सुखदाई ॥

(नेपथ्यमें)

दो वैतालिक-स्वामीकी जय हो-(ध्रुपद ईमनें कल्यान)

चिरञ्जीवि महाराज, प्रजापाल करत काज,
आपको सुन्याव देख सबही सुख पावैं ।
लोकहेत सहत दुःख, धर्म यह तुम्हारा नित्य,
अपने सुख हेत आप इच्छा बिसरावैं ।
जैसे तरु और हेत, छाया सुख सकल देत,
अपने शिर धूप शीत लेत दुख नशावैं,
दूसरा-दुष्टनके वश्य हेत, धारत निज हाथ दण्ड,
नाशत सब जनविवाद-नाम तव सुनावैं,
रक्षा नित करत भूरि, क्लेश दुःख करत दूरि,
जेहि हित नृप जन्म धर्म सकलहू लखावैं,
औरहू केतिक नरेश, वैभवयुत हैं विशेष,
प्रजाहेत पाल धर्म तुम सर नाहिं आवैं ॥

राजा--इनके वचनोंने तो मेरे थके मनको फिर हरा करदिया, (इधर उधर फिरता है)

प्रतिहा०-हे महाराज! अग्निशालाके बाहिर द्वारका कोठा भली प्रकार से संमार्जित किया हुआ सुशोभित है, वहींपर श्रीमहाराज चलैं ।

राजा-(सेवकोंके कंधोंपर सहारा देताहुआ राजा आरोहण करता है प्रतिहारि ! किस निमित्त महर्षि कण्वने हमारे पास ऋषि भेजे हैं ।

(जैजैवन्ती)

केहि कारण ऋषि शिष्य पठाये ।
तपसिन केहि धौं काजमाहिं कोइ,
विघ्न भयो तासों अकुलाये ।
वा केहि दुष्ट आश्रम जन्तुन,
कष्ट दियो कहने सोइ आये ।

अथवा मेरे अघके कारण,
आश्रम लतापुष्प मुरझाये ।
यह शंका व्यापत मेरे मन,
थिर न रहत बहु धीर बँधाये ॥

प्रति०-मैं तो यह विचारू हूं कि, यह तपस्वी आपके सुकर्मोंसे प्रसन्न हो अभिनन्दन करने आये हैं ।

(मुनिजन शकुन्तलाको साथ लिये गौतमीसहित आते हैं और पुरोहित कंचुकी आगे होते हैं)

कंचु०-महात्माओ ! इस ओर आओ ।

शार्ङ्गरव-हे शारद्वत !

(चौपाई)

महाभाग यह नृपति सुहायो ।
जासु प्रताप दशहुं दिशि छायो ॥
निज मर्याद कबहुं नहिं त्यागत ।
नीचहु वर्ण कुमार्ग न लागत ॥
पै मैं नित एकान्त निवासी ।
सदा इकेल रहन अभ्यासी ॥
जनाकीर्ण यह नृपस्थाना ।
अग्निदीप्तगृह सम मनमाना ॥

शारद्व०-मैंभी ऐसाही जानताहूं मेरीभी पुरमें प्रवेश करनेके समयसे ऐसी दशा होरही है ।

(दोहा)

सुखसंगी इन जननको, मैं देखत इहि भाँति ।
न्हायो तेल लगात जिमि, जिमिशुचि अशुचि मिलाति ॥
जिमि जागत सोवत लखहि, बँधुअन जिमि निर्बंध ।
तैसे मैं इनको लखहुँ, पडे जगतके धंध ॥

शकुन्तला-(निमित्त देखकर) हा! मेरी दाहिनी आंख क्यों फडकती है ?

गोतमी-पुत्रि! दैव कुशल करैंगे तेरे स्वामीके कुलदेवता अशकुनोंको मेट तुझे सुखदेंगे (चलती है)

पुरोहित-(राजाको बताकर) हे हे तपस्वीयो! यह वर्णाश्रमोंके रक्षक राजाधिराज पहलेही आसनसे उठकर तुम्हारी वाट देखते हैं, इन्हैं देखो।

शार्ङ्गरव-हे महाब्राह्मण! यह तो बडाईके योग्यही हैं, परन्तु हम तो इसमें निस्पृह हैं कारण कि-

दोहा-तरुवर फल लागे झुकत, जलयुत मेघ झुकाय।
सज्जन पाय समृद्धिको, झुकत मान विसराय॥
परोपकारिजनको सदा, यहै स्वभाव लखाय।
यहिमें अचरज कौन अति, धर्म धुरंधर राय॥

प्रतिहारी-स्वामिन्! यह तपस्वी प्रसन्नमुख दीखते हैं, इससे जानाजाता है कि, इनका कोई शान्तिवाला कार्य है।

राजा-(शकुन्तलाको देखकर-इनमें यह कोई स्त्री है)

दोहा-अञ्चलसे मुखढांकि यह, को इनके सँग बाल।
पूरी सुघराई यदपि, लख न परत इहिकाल॥
तदपि तपस्विनसे घिरी, यह लखाति अस तीय।
जीरनपातन मध्य जिमि, नवकोपल कमनीय॥

प्रतिहारी-महाराज! इनका वृत्तान्त जाननेकी तो मेरे मनमेंभी है पर मेरी तर्कना काम नहीं करती, पर हां यह स्त्री बहुतही सुन्दर और देखने योग्य है।

राजा--रहने दे दूसरेकी स्त्रीको देखना न चाहिये।

शकुन्त०-(अपने हृदयपर हाथ रखकर आपही आप)

(विहाग)

अहो! मन धीरज नेक धरो।
कत धरकत कारण विन अतिही चाहत भाग भरो।
सुधिकर आर्यपुत्रकी वह दिन जैसो प्रेम करो।
कंप त्याग सोइ हम सोइ प्रीतम चाहत दुःखटरो।

पुरोहित–(समीप जाकर) महाराज ! इन तपस्वियोंका विधिपूर्वक आदर सत्कार होचुका, अपने गुरूका जो यह संदेशा लाये हैं सो अब सुनलीजिये।

राजा–(आदरसे) मैं सुननेको सावधान हूं।

ऋषि–(हाथ उठाकर) महाराजकी जयहो।

राजा–तुम सबको प्रणाम करताहूं।

ऋषि–तुम्हारी मनइच्छा सिद्धहों।

राजा–मुनियोंके तपमें तो कोई विघ्न नहीं है।

शार्ङ्गरव–(जैजैवन्ती)

जिनके रक्षक तुम राजा, तहां विघ्न दुःख केहि काजा।
जहां भानुतेज प्रकाशै, तहां अंधकार सब नाशै॥ ।
राजा–तौ राजशब्द यह ज्ञानी, हम लियो यथारथ मानी।
अब कहो लोक हितकारी, हैं मुनि प्रसन्न दुखहारी
शार्ङ्गरव–स्वाधीन कुशल ऋषिराई-रहतें है सिद्धिसहाई।
उन पूछि अनामय राजा, यह कह्यो आपसे काजा।
राजा–क्या आज्ञा हमे सुनाई, सो दीजे आप बताई।
शार्ङ्गरव–यह कन्या शीलसुहाई-गन्धर्वरीति तुम पाई।
हम प्रीतिभावसों जानो अब बात यहै मनमानो।
दुहिताकी और तुम्हारी, यह जोडी भली विचारी।
गुण रूप माहिं तुम दोऊ, हो तुल्य कहत सब कोऊ।
तुम पूजनीय सज्जनमें, यह मानत हैं हम मनमें।
बेटी सत्क्रिया हमारी, हैमूर्तिमती सुविचारी।
नहिं तुल्य मिलावत जोरी, विधिको शिर है यह खोरी।
सो तुम दोउ योग्य मिलाई, निन्दा निज सकल मिटाई।
एहि गर्भवतीको राजन, ले धर्म करहु सब साधन॥

गौतमी–आर्य मैंभी कुछ कहनेकी इच्छा करतीहूं, पर मुझे अभी कहनेका अवसर नहीं मिला।

इन पूछे नहिं गुरूजन, निज विवाहके माहिं।
तुम पूछे नहिं बंधु जन, मिल बैठे इकठाहिं ॥
"करो परस्पर बात अब, सुख भोगो सबभांति।
प्रीति परस्पर दोउनकी, मोहिं सबभांति लखाति"॥

शकुन्त०–(आपही आप) देखूं अब स्वामी क्या कहते हैं।

राजा–यह क्या स्वांग है ?

शकुन्त०–(आपही आप) यह राजाका वचन तो अग्निरूप है।

शार्ङ्गरव–यह क्या आप तो भली प्रकार लोकाचार जाननेमें कुशल हैं।

दोहा–रहत सुहागिनि जाय जो, अपने पितुके गेह।
कैसिउ होय पतिव्रता, करत लोग सन्देह ॥
होय पियारी वा नहीं, रहै पियाके पास।
यह चाहत है बन्धुजन, एहिमें सकल सुपास ॥

राजा–क्या इस देवीसे मेरा पहले व्याह हुआ है ?

शकुन्त०–(दुःखी होकर आपही आप) हृदय ! जो तुझे डर था सो आगे आया।

शार्ङ्गरव–क्या अपने किये कार्यमें अरुचि होनेसे राजाको धर्मका त्यागना उचित है ?

राजा–आप यह असत्कल्पनाका प्रश्न कैसे करते हो ?

शार्ङ्गरव–ऐश्वर्यके मदवालोंमें यह विकार हुआ करते हैं कि, चित्त स्थिर नहीं रहता।

राजा–इस वचनसे तुमने मुझपर बडा आक्षेप किया है।

गौतमी–पुत्री ! अब एक मुहूर्तको लज्जा मत करै ला मैं तेरा घूंघट खोलदूं जिससे तेरा स्वामी तुझे पहचान ले। (घूंघट खोलती है)

राजा–(शकुन्तलाको देखकर आपही आप)

(झंझोटी)

बारबार दुविधा यहि मनमें।
व्याह भयो की नहीं हमारो,

या बालासँग वनमें।
लेनसकत नहिं सकत त्याग यहि,
लखत न कोइ जतनमें।
भोर ओसयुत कुन्द फूलको,
जिमि अलि लखत सुमनमें।
त्याग न सकत न लेन सकत रस,
दशा भई इमि जनमें।

(विचारता हुआ स्थित होता)

प्रतिहा०–अहो! महाराजकी धर्मपालकता! नहीं तो ऐसी स्त्रीरत्नको देखकर कौन शोच विचार करता।

शार्ङ्गरव–महाराज! मौन क्यों साध रहे हो?

राजा–हे तपस्वियो! मैं वारंवार स्मरण करता हूं पर सुधि नहीं आती कि इस भगवतीसे कब मेरा विवाह हुआ है, फिर क्षेत्री[1] कहानेसे भय करनेवाला मैं इस गर्भवतीको किस प्रकार स्वीकार करूं?

शकु०–(दुःखसे) हाय! जो मेरे संग व्याहमेंही शंका है तो अब मेरी बहुत दिनकी आशा टूटी।

(कलिंगडी)

"विपत्ति यह कैसी आय छई।
बहुत दिननकी आशा मेरी सो सब टूट गई।
वज्रसमान दुःख यह गाजो किमिहो शान्त दई॥
जेहि मुख अमि समान नित वाणी तेहिते अनल जई।
यह विपरीत लखत मैं जानों खोटो भाग हुई"।

शार्ङ्गरव–ऐसा मतकहो।

(रागललित)

कहो न ऐसी बात नृपति तुम,
नेक विचार करो मनलाई॥ (टेक)

---

१ जिस मनुष्यकी स्त्री दूसरेसे गर्भवती है उसे क्षेत्री कहते हैं।

जिहि मुनिकन्याको तुम छलकर,
दूषित कियो धर्म बिसराई ।
जेहि मुनि बुरो न मान तुम्हारी,
मानी सबही भाँति भलाई ॥
चोरीवस्तु चोरको जिमि को,
सौंपत तिमि निज सुता पठाई ।
साह बनायो तुम्हें साधुको,
मत अपमान करो नृपराई ॥

शारद्व०–शार्ङ्गरव ! अब तुम ठहरो हे शकुन्तला ! हमको जो कुछ कहना था कहचुके, और महाराजने जो कुछ कहा वहभी सुनलिया, अब तूही कुछ प्रतीतिकरा जिससे महाराजको सुधि आवै ।

शकुन्त०–(दुःखसे मनमें) जो अब वह प्रेमही न रहा तो सुध दिवानेसे क्या है? अब मैं लोकापवादसे कैसे बचूं यह चिन्ता है (प्रगट) आर्यपुत्र! (आधा कहकर रुकजाती है) जो व्याहमेंही सन्देह हो तो यह शब्द अनुचित है ।

(नट)

तुहि न उचित यह पुरुकुलराई ।
सरलस्वभाव तपोवनमें मोहिं,
कहि कहि मीठे वचन भुलाई ।
प्रीति बढाय करी परतिज्ञा,
अब काहे धारत निठुराई ।
"कहि २ प्यारी निपट लडैती,
दोउ भुज भरि भरि कण्ठ लगाई ।
वाही मुखते लोक कानतजि,
भाषतहो मोहिं नारि पराई ॥

राजा–(कानोंपर हाथ धरकर)
पापसे भगवान् बचावे ।

मम कुल और मोहिं तू देवी,
काहे चहत कलंक लगाई।
जो सरिता मर्याद त्याग निज
तट अरु तरुवर देत गिराई॥
वह अपनोही जल मलीन कर,
अपनी शोभा देत बहाई॥

शकु०–अच्छा यदि यथार्थमें तुम मुझे परनारी समुझतेहो तो जिसपर तुम्हारा नाम खुदा है पतेके निमित्त वह तुम्हारेही हाथकी मुंदरी देतीहूं, इससे तुम्हारी शंका मिट जायगी।

राजा–यह सबसे अच्छी बात है।

शकुन्त०(अंगुली देखकर) हा! धिक् मेरे हाथसे अंगूठी कहां गई?

(जैजैवन्ती)

अब भलिभांति विधाता रूठो।
हँसी भई सबभांति हाय हा!
आर्यपुत्र जानों मोहि झूठो।
अब कितजाउं करूं का मैया!
भई यथा भोजनहो जूंठो।

(बडी व्याकुलतासे गौतमीकी ओर देखती है)

गौतमी–बेटी! तैंने शक्रावतारके समीप शचीतीर्थमें जल आचमन किया था निश्चयही अंगूठी वहां गिरीहोगी।

राजा–(हँसकर) स्त्रियोंकी तात्कालिक बुद्धि यही कहाती है।

शकुन्तला–यह तो विधाताने अपनी प्रभुता दिखाई पर अभी औरभी पता दूंगी।

राजा–उसेभी सुनूंगा जो कहोगी।

---

१ मालनी एक छोटीसी नदी बिजनौरके जिलेमें गंगाजीसे थोड़ीदूर पूरबको है वहांसे दक्षिण ओर हस्तिनापूर १६ कोशके लगभग है बीचमें गंगाजीके दाहिनी ओर शक्रावतार तीर्थ है जिसे अब शुक्रताल कहते हैं।

(औपट)

शकुन्त०–पिय कछु करहु मनमें चेत।
एकदिन जब माधवीके लता मण्डप हेत।
बैठकर तुम नलिनिदलमें पानको जल लेत॥

राजा--तब क्या हुआ?

शकुन्तला–ता समय पालित हमारो बालमृग सुखदाय।
नाम दीर्घ अपांग प्यारे निकट आयो धाय॥
कही तुम अतिप्यारसे यह तुही जल कर पान।
पियो नहिं तुमसे महाप्रभु देशको नहिं जान॥
जब पियायो मैं पियो तब कही तुम अस बात।
सब कोई निज संगिजनसे हे प्रिया! पतियात॥
एक वनके दोउ निवासी दोउजन सुखदान।
भई हमसों नहीं आगे मृगशिशू पहँचान॥

राजा--इसीप्रकार निज प्रयोजन सिद्ध करनेवाली स्त्रियोंकी बनावटी बातों-से कामियोंके मन खिचजाते हैं।

गौतमी–हे महाभाग! ऐसी बातें मत कहो यह तपोवनमें पालीहुई कन्या छल छिद्र क्या जाने।

राजा--हे वृद्धतापसी! सुनो।

सहज स्वभाव नारि चतुराई।
सबगुण आकर्षनके जानत,
यद्यपि काहू नाहिं सिखाई।
पशुपक्षिनकी नारि गुणवती,
फिर मनुजनकी कौन चलाई।
देखो कोयल अपने बालक,
कागनसे पलवावत जाई।
पालित होय मिलैं अपने कुल,
यह देखी हम रीति सदाई।

शकुन्तला–(क्रोधसे)

(ललित)

हे अनार्य ! तुम निज सम सबही,
कुटिल हृदय कर जानो ।
तृणसे ढके कूप सम ऊपर,
धर्म वेष तुम ठानो ॥
तुमसों छलिया कौन होय जग,
सत्यवचन नहिं मानो ।
अपनायी पुनि दोष लगाई,
अब कहँ मोर ठिकानो ॥

राजा-(आपही आप)

तियको कोप बनावटको नहिं, यह मेरे मन आवै ।
एहिते मन सन्देह रह्यो भर, कहुं चित थिर नहिं पावै ॥
जब मैं कहत व्याह होनेकी सुधि मोहिं नेक न आवै॥
कबहुं इकान्त प्रीतिकी बातें भई न क्यों भरमावै ।
यह सुन भौंह चढाय क्रोधकर लाल नैन करलीन्हे ।
भौं मरोर इमि मनहुं कामधनुके युगखण्ड सु कीन्हे ॥

(प्रगट) हे भद्रे ! दुष्यन्तके चरित्र तो प्रसिद्ध हैं तोभी व्याहको विदित नहीं है ।

शाकुन्त०-होंगे ! मैं तो स्वच्छन्दचारिणी कहलाई जो मैंने मुखके मीठे पेटमें विषभरे इस पुरुवंशी राजाकी प्रीतिमें पडकर अपना हाथ गहाया (अंचलसे मुख ढाककर रोनेलगी) ?

शार्ङ्गरव-बिनाविचारे कामकी शीघ्रता इसीप्रकार जलाती है कहा है कि।

(तिताला-ठुमरी)

बिन परखे करिये व्याह नहीं,
यामें भलि बात लखात नहीं ।
अनजाने प्रीति जुरात जहां,
है वैर सुप्रेम रहात नहीं ॥

राजा-क्या तुम इसकी परतीति मान,
यह मुझपर दोष लगातेहो ।

शार्ङ्गर०-(अवज्ञासे) क्या तुम न सुनी यह उलटीरीत ।
जो सज्जनसंग सरसात नहीं ।
छलको जिन नाम न जन्म लियो,
तेहि बात न मानो सत्य कभी ।
जिन निज विद्या छल हेत सिखी,
वे झूंठे कबहुँ कहात नहीं ॥

दुष्यन्त-हे सत्यवादी ! यह तौ हमने जाना कि हमारी विद्या ऐसी है, पर यह तो कहो इससे छल करनेसे मुझे क्या मिलैगा ।

शार्ङ्गरव-घोर विपत्ति ।

राजा-पुरुवंशी विपत्ति चाहते हैं इस बातकी किसीको श्रद्धा नहीं होसकती है ।

शारद्व०-हे शारङ्गरव, इस उत्तर प्रत्युत्तरसे क्याहै ? गुरुका जो संदेशा था सो सुनादिया चलो अब लोटचलो (राजासे) ।

दोहा-यहै तुम्हारी कान्ता, तुम इसके भर्तार ।
वशवर्तिनि चाहै तजो, चहैं कर अंगीकार ॥

आओ गौतमी ! आगे चलो। (दोनों मिश्र और गौतमी जातेहैं) ।

शकु०-इन छलीने तो छोडदिया क्या तुमभी मुझे छोड़ जाओगे ?

(उनके पीछे चलती है)

गौतमी-(खड़ी होकर) पुत्र शार्ङ्गरव यह देखो ! करुणापूर्वक विलाप करती हुई शकुन्तला पीछे २ आती है, अब निरमोही पतिके छोडने पर मेरी अभागी पुत्री क्या करै ।

शार्ङ्गरव-(क्रोधपूर्वक शकुन्तलासे) हे भाग्यहीने ! क्या तू स्वच्छन्द चारिणी होना चाहती है ?

(शकुन्तला भयसे काँपनेलगी)

शार्ङ्गरव-हे शकुन्तला !

(चौपाई)

यदि तू है यथार्थमें ऐसी, महाराज भाषत हैं जैसी।
तो दूषित पितुघर कह कामा, यदि तू सत्यवादिनी वामा।
तो पतिकी बनकर रह दासी, यहां रहन भल त्यागउदासी
पतिके गेह भली सेवकाई, यह सब लोकाचार भलाई॥

अब तू यहीं ठहर हम आश्रमको जाते हैं।

राजा–हे तपस्वियों! अब इस भगवतीको क्यों वंचित करतेहो?

दोहा–चन्द खिलावत कुमुदनी, रवि कर कमल प्रकाश।
वशी पुरुष परनारिसे, करत न प्रेम विकाश॥

शार्ङ्गरव–जब कि, आप दूसरेका संग पाकर अपनी पहली वृत्तिको भूलगये तब अधर्मसे भय करनेकी क्या बात है?

राजा–(पुरोहितसे) मैं तुमसे इस विषयकी भलाई बुराई पूछताहूं।

दोहा–भयो मूढ मैं वा यही, मिथ्या कहत बनाय।
कहो आप भलिभाँतिसे, जेहिविधि संशय जाय॥
तिय त्यागेकर होय अघ, यदि सांची यह नार।
नहिं परनारी परसको, पातक लगै अपार॥

पुरोहित–(विचारकर) अब तो यह कीजिये।

राजा–कृपाकर आप कर्तव्य कहो।

पुरोहित–जबतक इसके सन्तान न हो तबतक यह हमारे घरमें रहै इसके कहनेका कारण यह है कि, बड़े २ ज्योतिषी महात्माओंने कह, रक्खा है कि, आपके चक्रवर्ती पुत्र होगा, यदि वह इस मुनिकन्याके चक्रवर्तीलक्षणवाला जन्मैं तो आदरके साथ इसको रनिवासमें लेना-यदि ऐसा न हो तो इसका पिताके समीप जाना निश्चितही है।

राजा–जो गुरुजनोंको भला लगे सो करो।

पुरोहित–(शकुन्तलासे) बेटी! आ मेरे पीछे चलीआ।

शकुन्तला–हे भगवती वसुधे! मुझे स्थान दे तो मैं समाजाऊं।

(रुदन करतीहुई पुरोहितके पीछे २ तपस्वियोंसाहित जाती है राजा शापवश भूलाहुआ शकुन्तलाकाही ध्यान करता है)

(नेपथ्यमें)

बड़ा आश्चर्य हुआ !

राजा-(सुनकर) क्या हुआ ?

पुरोहित-(आकर विस्मय पूर्वक) देव बड़ी अद्भुत बात हुई ।

राजा-क्या ?

पुरोहित-देव !

(जैजैवन्ती)

कण्व शिष्य जब गेह सिधाये ।
तब वह बाल भाग निज निन्दत,
चली रुदन कर बांह उठाये ।

राजा-तब क्या हुआ ?

पुरोहित-तब अप्सरा तीर्थके तट इक,
ज्योति लखी तियरूप सुहाये ।
ताहि उठाय गई उड कित जनु,
जान न परी मोह भ्रम पाये ॥

(सब आश्चर्य करते हैं)

दुष्यन्त--भगवन् ! पहलेही हमको यह बात भास गई थी, अब इसमें तर्क खोज वृथा है जाओ घर विश्राम करो ।

पुरोहित-(देखकर) महाराजकी जय रहै (गया)

राजा-हे वेत्रवति ! इससमय मैं व्याकुल होरहाहूं विश्रामस्थानका मार्ग बता ।

प्रतिहारी-महाराज ! इधर आवैं इधर आवैं ।

(चलतीहै)

राजा-(सोचता हुआ)

दो०-सुधि न ब्याहसे निदरि तिय, कहिकहि वचन कराल।
अति पीडित हो हिय कहत, है वह सांची बाल ॥

(सब बाहरगये)

इति पांचवां अंक पूर्ण हुआ ।

छठे अंकका प्रवेशक।

(स्थान एक गली)

दो प्यादे और राजाका साला कोतवाल एक बंधुएको लाते हैं।

प्र०सिपाही-(बंधुएको पीटताहुआ)।

(अंग्रेजी धुन)

बतला तू सच गंवार, मत बातकर हजार।
कहांसे मिली अंगूठी, ये राजाकी नामदार॥

कुम्भिलक-(काँपता हुआ)
मुझपर करो दया, अपराध नहीं किया।
ऐसा नहीं हूं करतेहो मुझको जो मारमार।

प्र०प्यादा-क्या विप्र तू सुजान, राजासे पाय दान।
मुंदरीकी बात कह, नहीं करताहूं तीन चार।

कुम्भिलक-सुनलो तो पहलै बात, धीमर है मेरी जात।
धोरेही शक्रतीर्थके जानोंजी घर हमार।

दूसराप्या०-मुंदरीकी बात बोल, बकता क्यों गोलमोल।
क्या जात पात पूछते हैं, तेरी चोर जार।

कोतवाल-कहनेदो बात सब, रोंको न इसको अब।

दोनों-कहते हैं कोतवाल जो तू करबे उसप्रकार।

कुम्भि०-तहँ जाल डार डार, मछरिनको मार मार।
उनहींको बेंचबाँचकै, पालूं मैं घर दुआर।

कोतवाल-है जीविका भली।

कुम्भिल०-कहिहे न ये अजी।

जिसका जो धर्म कुलका, नाहिं इसमें कुछविचार।
वह योग्यहो अयोग, निन्दाके नहीं जोग।
पशुवधको सब बखाने, बडे निर्दयीको कार।

पै यज्ञमें अनेक, मारे हैं बलके हेत ।
क्या विप्रवर्ग बीच नहीं दयाका प्रचार ॥
कोतवाल-आगेका बोल हाल ।
धीमर-हे दीनके दयाल ।
एक रोहू मछली एकदिन, देखीथी पेटफार ।
उसहीके पेट मांह मुंदरी मिली ये नाह ।
तुम गह्यो बीचसे आय, बात दीबताय ।
उसहीको बेचनको मैं आयाथा इस बजार ।
अब मारो चाहे छोडो,जोहो धर्ममें तुम्हार ।
इहिबीच धरो आय, दी बात सब बताय ।
खाता है गोह मांस, आती है इसके बास ।
कुछ पूछ पाछ औरभी,जानुक करो सुधार ।
राजाके पास जाय,सब भेद देसुनाय ।
दोनों-(बहुतअच्छा) चल बेगटकटे अब है कहां उबार ।

(सब चलतेहैं)

कोतवाल--सूचक नगरके द्वार, तुम ठहरो खबरदार ।
मुंदरीका व्यौरा जबतलक कहआऊं मैं पुकार ॥
दोनों-अच्छा जाओ स्वामीको प्रसन्नकरो ।

(कोतवाल गया)

प्र० प्या०-हेजानुक ! कोतवालजीको बडी देर हुई ।
द्वि० प्या० -राजाओंके निकट समयसेही जाना होता है ।
प्र० प्या०--(धीमरको देखकर)हेजानुक! इस अपराधीके शिरपर भालारखनेको मेरे हाथोंमें खुजली होती है ।
धीमर--विना अपराध मेरे प्राणलेनेकी क्यों इच्छा करतेहो ?
दूसरा--(देखकर) यह देखो हमारे स्वामी हाथमें राजशासनका पत्र लिये आते हैं, हेधीमर ! अब या तो तुझे गृद्धखांयगे वा कुत्तोंका मुख देखैगा ।

कोतवाल--हेसूचक ! इस धीमरको छोड़दो अगूंठीका भेद खुलगया ।

सूचक--जो आज्ञा ।

दूसराप्या०-यह तो यमराजके घरसे लौटआया (बंधन खोलता है)

कुम्भिलक--(कोतवालको प्रणामकर) स्वामी ! कहिये मेरी आजीविका कैसी है ?

कोतवाल--अरे ! महाराजने इस अंगूठीका मोल और कुछ पुरस्कारभी दिया है (द्रव्य देता है)

कुम्भि०--(हाथजोडकर और द्रव्य लेकर) स्वामीने मुझपर बड़ी कृपाकी

सूचक--यह दया नहीं तो और क्या है जो तुझे शूलीसे उतारकर हाथीके ऊपर बैठादिया ।

जानुक--स्वामी पारितोषिकसे जानाजाता है कि वह अंगूठी बडेमोलकी होगी ।

कोतवा०--मेरे जान स्वामीने अंगूठीका रत्न तो बडेमोलका नहीं माना पर उसके दर्शनमात्रसे ही राजाको किसी अपने बडेप्रीतम की सुध आगई, गम्भीरस्वभाव होनेपरभी अंगूठीके देखतेही कुछ देरतक उदासरहे ।

सूचक--तो तो तुमने स्वामीकी बडी सेवा की ।

जानुक--यों कहो कि इस धीमरका बडा काम किया ।

(धीमरकी ओर ईर्षाकी दृष्टिसे देखा)

धीमर-क्रोध मतकरो फूलमालाके बदले अंगूठीका आधामोल तुम्हे भी दूंगा

जानुक-तुझे ऐसाही उचित है ।

कोतकाल–अरेकुम्भिलक!'अब तो तू हमारा बडा प्रियमित्र हुआ' तो पहली प्रीतिका साक्षी मदिराको बनाना चाहिये चलो कलारकी हाटमें चलैं (सबगये)

(इति प्रवेशकः)

---

१ प्राणदण्ड देनेके समय अपराधीके गलेमें फूलमाला पहराईजाती है ।

अंक--६.

(राजभवनकी फुलवाडी)

(विमानमें बैठीहुई सानुमतीअप्सरा आकाशसे आती है)

(रोला छन्द)

सानु०अप्सरतीर्थ माहिं जबतक है स्नानसमय सज्जनको।
तबतक वारी वारी जानो पडै अप्सरागनको ॥
सो इसकाज माहिंतौ मैंने अब निचिताई पाई ।
अब वृत्तान्त राजऋषिको मैं चलकर देखूंजाई ॥
अहै मैनका मेरी आली सबविधिसे गुणवारी।
उसकेही सम्बन्ध शकुन्तल मुझे प्राणते प्यारी ॥
मुझे मेनका, बेटीके हित नृपके नगरपठायो ।

(चारोंओर देखकर)

यह वसन्तउत्सवके दिन क्यों नगर उदास लखायो।
यद्यपि पूछे विना जानलूं गुप्त हेत परकासी !
आज्ञामान सखीकी परमैं लखिहौं भेद उदासी ॥
इन उद्यान रखानेवालीके समीप अब जाई ।
भेदहेतु मायाके बलसे बैठूं गात छिपाई ॥

(विमानसे उतरकर बैठती है)

(आमकी मंजरीको देखतीहुई एक चेरी आती है और दूसरी उसके पीछे)

(चोपाई)

प्र०चेरी-आममंजरी सरस सुहाय ।
हरित पीत कहुं लाल लखाय ।
है तुहि जीवनमूल वसन्त ।
है तुही शोभासकल कहन्त ।
तेरा प्रथम दरशमैं पाय ।
विनवतहूं अतिप्रेम बढाय ।

ऋतुकोहू जे मंगलकारि,
रतिपतिकी तू प्राण पियारि ॥

द्वि०चेरी–हे कोकिले तू आपही इकली क्या कहरही है ?

प्र०चेरी–हेमधुरिके ! आमकी कलीको देखकर कोकिला मत्त होतीही है।

द्वि०चेरी–(प्रसन्नतासे समीप जाकर) क्या वसन्तऋतु आगई !

प्र०चेरी–हे मधुरिके ! तेरायह मदविभ्रमवाले गीत गानेका समयहै ।

द्वि०चेरी–हे सखि!तू मुझे सहारा देकर उचकादे तौ मैं पांयके अग्रभागसे खडी होकर एक आमकी मंजरी लेलूं इससे भगवान् कामदेवकी पूजा करूंगी ।

प्र०चेरी–जो मुझे पूजाके फलसे आधादे तौ सहारा दूंगी ।

दूसरी–हेअली ! जोतू यह न कहती तौ क्या आधाफल न देती, कारण कि मेरा तेरा तौ एकप्राण दो देह है (सहेलीका सहारा लेकर मंजरी तोड़ती है) यद्यपि यह आमकी कली अभी खिली नहीं है, तौभी टूटनेके स्थानसे कैसी सुहावनी महक आ रही है (अंजली बनाय मंजरी भेंटको लेकर)

(वसन्त)

हेआममंजरी रसनिधान,
रतिपतिको अरपति तोहिं निदान ।
जेहि अबहिं लियो कर धनुष बान,
तेहि पंचबानमें अधिक मान।
पथिकन तियके जिय वेध हेतु,
तू अधिक बानवन मीनकेतु ॥

(मंजरी अर्पण करदी)

(कंचुकी आता है)

कञ्चुकी-(रिस होकर) अरी बावलियो यह क्या करतीहो? महाराजनेतो अबके वर्ष वसन्त उत्सवका होना निषेध करदिया है फिर तुम क्यों आमकी मंजरी तोडती हो ?

दोनों--(डरकर) प्रसन्न हो हमने यह काम जानकर नहीं किया।

कंचुकी-तुमने नहीं जाना कि वसन्तके तरुवरोंने तथा उनके आश्रित पक्षियोंनेभी तो महाराजकी आज्ञा मानी है। देखो तो।

(रागवहार)

तुम देखतहो नहीं काहे अरी।
बहुदिनकी लगीं कली आमनकी।
नहिं देत परागरही निकरी॥
कूरेको तरु कलियाय रहो,
विकसी नहिं तनहू मौलसिरी॥
गइबीत शिशिर कबकी बगरी,
नहीं अजहूं कोकिल कूकभरी॥
शंका मोहिं आधो बान काढ पुनि,
धरत निषंग मनोज डरी॥

दोनों-इसमें क्या सन्देह है यह राजर्षि ऐसाही प्रतापवान् है।

प्र०चेरी-हे महानुभाव कुछदिनोंसे हम महाराजके साले, मित्रावसुकी भेजी महारानीके चरणोंमें आई हैं, हमै इस कुमुदवनके पालनका कर्म मिला है, इसकारण विदेशी होनेसे हमने यह वृत्तान्त नहीं सुना।

कंचु०-अब हुआ सो हुआ फिर ऐसा न करना।

दोनों-हे श्रेष्ठ! हमें इसबातके जाननेकी इच्छा है जो यह हमारे जानने योग्य हो तौ कहो महाराजने वसन्तोत्सव क्यों वर्जदिया है।

सानु०-(आपही आप) मनुष्योंको तो सदा उत्सव भला लगता है, इसमें कोई बड़ा कारणहोगा जो ऐसी आज्ञा दीगई है।

कंचुकी-यह तो सब जान चुके हैं फिर इसको कहनेमें क्या है, क्या शकुन्तलाके त्यागकी बात तुम्हारे कानोतक नहीं आई।

दोनों-हां राजाके सालेके मुखसे अंगूठी मिलनेतककी बात हमने सुनली है।

कंचु०-तो थोडाही कहना पडेगा, सुनो जबही महाराजने अंगूठी देखी

तत्काल कहदिया मुझे सुध आगई, शकुन्तलाका व्याह मुझस एकान्तमें हुआ था, मोहसे मैंने उसको त्यागा है, उसीदिनसे महाराज पछतावेमें पडे हैं–

(वहार)

सुखदवस्तु नहिं कोइ सुहावै,
मंत्रीवर्ग निकट नहिं जावै।
परेरहत सेजनकी पाटी,
रातौं रात नींद नहिं आवै।
जबरनवास जाय बतरावत,
यदपि चतुरता करि गुहरावै।
नाम भूल कर कहै शकुन्तला,
फेर लजाय सीशमहिनावै।
जब जब रहत इकन्त नृपतिमणि,
तब तब नैन नीर भरिलावै।
कहैं कहा नृपको पछितायो,
विरहविथा अतिही तनुतावै॥

सानु०--(आपही आप) यहबात तौ मुझे प्यारी लगी।

कंचुकी–इसी दुःखसे महाराजने वसन्तोत्सव वर्जदिया है।

दोनों–यह तो उचितही था।

(नेपथ्यमें)

इधर आइये इधर आइये महाराज !

कंचु०--(कान लगाकर) अरी ! महाराज इधरही आते हैं, जाओ तुम अपना काम करो।

दोनों–अच्छा (गईं) (दुःखियोंकासा वेष किये प्रतिहारी और माढव्यके साथ दुष्यन्त आता है)

कंचुकी–(देखकर) यह सत्य है तेजस्वी पुरुष सभी दशामें मनोहर लगते हैं, यद्यपि हमारे महाराज उदासीमें हैं तो भी इनका दर्शन कैसा मनोहर है।

(खम्माच)

यद्यपि वाम हाथमें कंकन पहरे एक दुखारे हैं।
शोभित हैं तद्यपी और सब भूषण राउ उतारे हैं।
तत्ती श्वासोंसे होठोंकी सूखगई सब लाली हैं।
नींद नहीं आवै सारी निशि नैनभये अरुणारे हैं॥
राजसाज सब दूर किये हैं विरहविथासे दुबले हैं।
तदपि तेजके कारण दैवी शोभा तनपर धारे हैं॥
जैसे चढाशानपर हीरा शोभामान लखाता हैं।
तैसे तेजमान राजाजी लागत सबै पियारे हैं॥

सानुमती-(राजाको देखकर) अनादर पानेसे भी शकुन्तला इसके वियोगमें व्यथित हो रही है, सो क्यों न हो यह इसी योग्य है।

राजा--(ध्यानमें इधर उधर फिरकर)

(केदारा)

जब ढिग आई प्राणपियारी।
चेतायो चेतो नहिं तूं मन,
दीन्ही सब विधि सुरत विसारी।
अब चेत्यो सन्ताप सहन हित,
मृगनैनीके ध्यान मझारी॥

सानु०-(आपही) इसीसे उस तपस्विनीके बडे भाग हैं।

माढव्य-(आपही आप) इनपर शकुन्तलारूपी व्याधी फिर आगई, न जानिये अब इसका उपाय क्या होगा।

कंचु०--(राजाके समीप जाकर) महाराजकी जयरहै मैं भली प्रकार प्रमदवनको देख आया, आप अपनी इच्छानुसार उसके विनोदस्थानोंमें विश्राम करैं।

राजा-हे प्रतिहारी ? तुम हमारे वचनसे जाकर मंत्रिश्रेष्ठ पिशुनसे कहो कि बहुत कालके जागनेसे हमें धर्म आसनपर बैठनेकी सामर्थ्य नहीं रही, इससे प्रजा सम्बन्धी जो कार्य हो उसे पत्रपर लिखकर. हमारे पास भेज दिया करैं।

प्रतिहारी—जो आज्ञा (गया)

दुष्यन्त—वातायन! तुमभी अपने कामपर लगो।

कंचुकी०—देवकी जो आज्ञा (गया)

विदूषक—यह स्थान तो अपने निर्माक्षिक[1] करदिया अब शीत और गरमी की निवारण करनेवाली मनोहर इस प्रमदाकुंजमें बैठकर जी बहलाओ।

राजा—हेमित्र! आपत्ति छिद्र देखती रहती है यह कहावत सत्य है कारण कि—

(दरबारी कान्हरा)

कहौं कहा कही न हमसे जाय।
मुनिदुहिता सँग व्याह भयो मन मन सुधि दी बिसराय।
अब सुधि करकर उन बातनकी जिया रह्यो अकुलाय॥
मिटन न पायो सो भ्रम जबतक मदन पहूंचो आय।
धनुपर बाण मंजरीको धर ताकन लगो कुभाय॥
मा० ठहरो तनक कामको सबभय देहौं अबहिं मिटाय।
मनसिजके बाणीको लाठी सेमैं देहुँ गिराय॥

(लाठी उठाकर आमकी मंजरी तोडनेको खडा होता है)

राजा--(हँसकर) हां, मैंने तेरा ब्रह्मतेज देखलिया बता तो मित्र! अब कहां बैठकर प्यारीकी उनहारवाली लताओंको देखकर नेत्र शीतल करूं।

माढव्य—क्या स्वामीने चतुरिकाको आज्ञा नहींदी है, कि हम यह समय माधवीमण्डपमें बितावैंगे, वहीं मेरे हाथकी लिखीहुई भगवती शकुन्तलाकी चित्रपटी लाना।

राजा--जो वह ऐसा मनोहर स्थान है तो उसीका मार्ग बता।

माढव्य—महाराज! इसओरसे आइये।

(दोनों चलते हैं सानुमती पीछे २ जाती है)

माढव्य--जहां मणियोंसे जटित शिलाकी चौकी बिछी है, यही माधवीकुंज है यह ऐसी दीखती है मानो आदरके निमित्त हमें फूलौंका उपहार देती है, चलो वहीं चलकर बैठिये।

---

१ अर्थात् यहां मक्खीभी नहीं रही निर्मल।

(दोनों चलकर बैठगये)

सानुम०--(आपही आप) मैंभी प्यारी सखीका चित्र इस लतामण्डप की ओटमें बैठकर देखूंगी और फिर इसके प्रेमकी अधिकाई उससे जाकर कहूंगी ।

(लताकी ओटमें बैठगई)

राजा--हेमित्र मुझे अब शकुन्तलाके मिलनेके पूर्व वृत्तान्तकी सब सुधि आगई, और मैंने तुझसेभी तौ कहा था, परन्तु उसके अनादरके समय तू मेरे निकट नथा और न कभी तैंने उसका नामलिया सो क्या तूभी उसे मेरेही भांति भूलगया था ।

माढव्य--नहीं मैं नहीं भूलाहूं परन्तु सब बात कहनेके पीछे आपने यह भी तो कहा था कि यह बात हमने निरी जीबहलानेकोही कही थी, यथार्थमें नहीं, मैं ने भी अपनी मूढबुद्धि से वैसाही मान लिया था होनहार प्रबल होता है ।

सानु०--(आपही आप) यह ऐसेही हैं ।

राजा--(शोकसे) मित्र मुझे दुःखसे छुटाओ ।

माढ०--महाराज! यह आप क्या कहते हैं, आपमें यह शोभा नहीं देता सत्पुरुष कभी शोकसे कातर नहीं होते, देखो वायुके प्रबलवेगसे भी पर्वत काम्पित नहीं होते ।

राजा--(पहाडी धुन)

वह सुधि कर कर जिय अकुलाय ।
जब प्यारीको त्याग दियो मैं दशा कहूं क्या हाय ।
मैं नहिं तोहिं रख सकत गेह निज तव प्यारी विलखाय ।
चलनेलगी साथियनके सँग तब वे उठे रिसाय ।
ऋषिकुमार गुरुसम जेहि मानत बोले क्रोध बढाय ।
चलन अभागी साथ हमारे वही ठहर मतिआय ।
तेहि छिन आंशूभरि मोहिं देखत खड़ीरही दुखपाय ।

मम कठोर हियमें विष शर सम अब कसकत सो आय।
वे जलभरे नैन दोउ राते जियमें रहे समाय।
फल न मिलो प्यारी पछिताई मोसे नेह लगाय॥

सानु०--(आपही आप) अपना स्वार्थ ऐसा प्रबल होता है कि इसका दुःखभी मुझे अच्छा लगता है।

माढव्य--मेरे विचारमें तो यह आता है कि उसे कोई आकाशचारी देवता उठाकर लेगया।

दुष्य०--ऐसी पतिव्रताके स्पर्श करनेकी किसे सामर्थ्य है मैंने सुना है कि मेनकासे उसका जन्म है सो मेरे मनमें तो ऐसी भासती है कि उसीकी सखियें उसे उठालेगई।

सानु०--सुधिका भूलना अचंबेकी बात है न कि सुधिका आना।

माढव्य--हे मित्र! जो ऐसा है तो वह शीघ्र मिलेगी।

राजा--तुमने यह कैसे जाना।

माढव्य--यह कि माता पिता अपनी पुत्रीको बहुत कालतक पतिके वियोगमें दुःखी नहीं रहने देते।

राजा--(असावरी राग)

मित्र कहां मम प्राण पियारी।
जब संयोग भयो प्यारी सँग,
सुपनोही वा मायाभारी।
अथवा फल मेरे पुण्यनको,
प्रगट मिटो पुनि कियो दुखारी।
अब वह सुख फिर मिलत न दीखत,
इच्छा पडी अथाह हमारी।
तेहि विन अब जीवन धिक् मानत,
चहुँदिशि दीखपरे अँधियारी॥

माढव्य--ऐसा मतकहो, देखो अंगूठीही इसका दृष्टान्त है कि खोई हुई वस्तु फिर मिलसकती है, प्रारब्धसे अचिन्त्य समागमभी होजाता है, दैवइच्छा सदा बलवान् है।

राजा-(मुदरीको देखकर) यह मुंदरी ऐसे स्थानसे गिरी है जहां फिर पहुँचना कठिन है इस कारण यह शोच करनेके योग्य है ?

(पहाडी धुन)

शोचयोग अति यह मुँदरी है ।
जहँसे छुटे कठिन ढिग पहुंच न,
ऐसे करसे छूट परी है ।
अथबा जानपरत इस फलसे,
मम सम तुच्छ पुण्यनिदरी है ।
अति मनहर नख अरुण ऊंगरी,
पाकर गिरी अभाग भरी है ॥

सानु०-(आपही आप) जो यह किसी औरके हाथ पडती तो अवश्य इसका खोटा भाग गिना जाता ।

माढव्य-मित्र ! यह तो कहो यह मुंदरी किसप्रकार उसकी अंगुलीतक पहुंची ।

सानु०-(आपही आप) मेरे मनमेंभी यही सुननेकी इच्छा थी ।

दुष्य०-सुनो जब मैं तपोवनसे अपने नगरको आनेलगा तब प्यारी नेत्रोंमें आँशूभरकर बोली आर्यपुत्र ! अब कब सुधलोगे ?

विदूषक-तब फिर ।

(काफी)

राजा-तब मुँदरी तेहिकर पहराई ।
बहुतभाँति समझाय बुझायो ,
चलत समय यह बात सुनाई ।
नितप्रतिगिनियो अक्षरयाके,
अन्तिमअक्षर जादिन आई ।
तब निश्चय मनमें यह करियो,
लैजैहै कोइ आज बुलाई ।
हाय ! भयो निर्दयी अधिकमैं,
वह सुध बुधही सकल भुलाई ॥

सानु०-(आपही आप) मिलनेकी अवधि तो अच्छी रक्खी थी, पर दैवने बिगाडदी।

माढव्य--फिर यह धीवरसे काटीहुई रोहूके पेटमें कैसे पहुँची ?

राजा-जब प्रियाने शचीतीर्थसे आचमनको जललिया तब हाथसे गंगामें गिरपड़ी।

माढव्य--सत्य है।

सानुमती--(आपहीआप)इसीसे तपस्विनी शकुन्तलाके साथ व्याहहोनेमें अधर्मसे डरकर राजर्षिने सन्देह किया था, परन्तु मुँदरीके देखनेसे इतना अनुराग क्यों हुआ यह आश्चर्य है।

राजा-इसीसे मैं इस मुँदरीको बुरा कहताहूं।

माढव्य-(आपही आप) इन्होंनेतो उन्मत्तोंका मार्ग ग्रहण किया है।

(देवगिरी)

राजा-कोमल अँगुरिनपर तू पहुंची,
हेमुँदरी जब सुखसे जाय।
तिन्हैं त्याग जलमें क्यौं पैठी,
कैसे काज बन्यो यह हाय।
अथवा तू अचेत है तुझको,
भले बुरेका क्या है ज्ञान।
मैंने चेतन होकर कैसे,
प्यारीको कीनो अपमान॥

माढव्य-(आपही आप) यह तो पडे मुँदरीके ध्यान।
मैं क्यों देऊँ भूँखसे प्रान।

राजा-प्यारी तुहि निष्कारण त्यागो,
दयाकरो दरशन दो आन॥

(एक स्त्री चित्र हाथमें लिये आई)

चतुरिका-महाराज! यह महारानीका चित्र देखिये (चित्र दिखाती है)

माढव्य--मित्र यह चित्र बहुत विचित्र बना है, जो भाव जहां चाहिये वैसे बने हैं इसके नीचे ऊंचे स्थानोंका मेरी दृष्टिको भ्रम होता है।

सानुमती--अहो इस राजर्षिकी चतुराई ! मुझे सखी चित्रमें ऐसा दीखती है जानो सामनेही खड़ी है ।

(खम्माच)

राजा-रीति चितेरोंकी है जो जो वस्तु चित्रके माहीं ।
आय यथारथ सके नहिं तेहि आन भाँति दरशाहीं ॥
याही भाँति चित्रमें मैंने लिखी प्रिया मनभाई ।
तदपि रूपकी छबि कुछ कुछु इन रेखोंमें झलकाई ॥

सानु०-(आपही आप) यह प्रेमके भरे वचन पछतावेके योग्यही हैं तथा निरभिमानकेभी योग्य हैं ।

माढव्य-मित्र इसमें तो तीन भगवती दीखती हैं, तीनोंही दर्शन योग्य हैं इनमें श्रीमती शकुन्तला कौनसी है ?

सानु०-इसने उस भगवतीको नहीं देखा इसकारण इसके नेत्र निष्फल हैं।

राजा-अच्छा कहो तो मित्र ! तुम इनमें किसे शकुन्तला जानतेहो ?

माढव्य-मैं जानताहूं कि यही शकुन्तला होगी जिसकी वेनी ढीली होकर बालोंसे फूल गिरते हैं, पसीनेकी बूंदें कपोलोंपर ढलक रही हैं, शरीर छ थकासा है, निराली भाँति भुजा फैलाये इस सींचेहुए नईकोंपलोंवाले आमके निकट खडी है, इधर उधरकी दोनों सखी होंगी ।

राजा-तू बडा चतुर है इस चित्रमें यह मेरे सात्विक भावको चिन्ह देखो

दोहा--लगी पसीजी आंगुरी, रेख मलीन दिखाय ।
आंशुनकीको रँगाकियो, गिरे कपोलन आय ॥

हेचतुरिके ! अभी इस विनोदस्थानका चित्र पूरा नहीं लिखागया है इससे जा चित्रनिर्माणकी सामग्री लेआ ।

चतुरि०--आर्य माढव्य ! जबतक मैं आऊं तुम चित्रपटी लियेरहो ।

राजा-मैं ही तबतक लिये रहूंगा (चित्र लेलिया)

(चतुरिका गई)

(रागआसावरी)

राजा-हा प्यारी जब सन्मुख आई ।

तब कठोरता कीन्ह हिये अस,
सन्मुख सो नहिं बैठन पाई ।
चित्रमाहिं लखि २ अब प्यारी ।
आदर देदे थकत न राई ।
नदी प्रवाह उतरनेपर जिमि,
मृगतृष्णाको दौरत जाई ।
सो गति आन भई यह मेरी,
अब कहा हाथरहे पछताई ॥

माढव्य--(आपही आप) महाराज तो नदी उतर मृगतृष्णामें पड़े हैं (प्रगट) मित्र ! अब इसमें क्या लिखना शेष है ।

सानु०--(आपही आप) मेरे जान तो राजा उनस्थानोंकोभी लिखेंगे जो मेरी सखिको प्रिय थे ।

राजा--सुनो ।

(सुहाग)

अबहिं यह लिखनको है मीत ।
नवी मालिनि वहै इहि थल सकल भाँति पुनीत ॥
होंयबैठे हंस जोडे तासु रेती तीर ।
हिमालय दुहुँओर शोभित खग मृगनकी भीर ।
तहाँ बैठे हरिन सुखसों करत होहिं जुगाल ।
और चाहत मित्र लिखनो एकवृक्ष विशाल ॥
सूखतेहो जासु शाखा मुनिजननके चीर ।
तहां हरिनी लिखूं बैठी कृष्णमृगके तीर ॥
सींगसे तेहिके रहीहो वामनैन खुजाय ।
चित्रमें यह सकल बातें लिखो देहुँ बनाय ॥

माढव्य--(आपही आप) मैंतो यह चाहताहूं कि इस चित्रपटीको यह लम्बी डाढीवाले तपस्वियोंसे पूर्ण करदे ।

राजा--मित्र ! शकुन्तलाका एक भूषण लिखनेकी इच्छा थी सो तो रहहीगया ।

माढव्य--कैसा ?

सानुमति--(आपही आप) जो वनवासी युवतियोंके शेखरके योग्यहो ।

(आसावरी)

राजा-कर्णाभूषण शेष रह्योहै ।
शिरसफूलको बनो मनोहर,
शशिकर सरिस नयो उनयो है ।
केशर जासु कपोलन ऊपर,
लटकत आय सुराज लह्यो है ॥
कमल नालकी उरपै माला,
लिखनी रही विचार कह्यो है ।
शरद चन्द्रकी कर सम कोमल,
सुन्दर रस जनहित निचयो है ॥

माढ०-हे मित्र ! यह भगवती लाल कमलकी पंखरीकी समान हाथसे अपने मुखको छिपाये चकितसी क्यों होरही है (विचारपूर्वक देखकर) अहा ! यह दासीपुत्र फूलोंके रसका चोर भौंरा भगवतीके मुखपर घूमता है ।

राजा-इस ढीठ भौंरेको दूरकरो ।

माढव्य-तुम्हेंहीं ढीठोंको दण्डदेनेकी सामर्थ्य है, तुम्हीं इसे निवारण करसकोगे ।

राजा-सत्य कहतेहो अरे फूलवालीलताके प्यारे पाहुने! तू यहां खेद उठाकर क्यों आया है ।

दोहा-भौंरी बैठी फूलपै, ताकोरही निहारि ।
भूंखी प्यासी तो विना, ले न सकत रसवारि ॥

सानु०-यह वर्णना तो बडी उत्तमरीतिका है ।

माढव्य-यह जात बडी ढीठ होती है समझायेसे नहीं मानती ।

राजा–अरे मेरी आज्ञा नहीं मानता ? सुन !

दोहा–नवपल्लव कोंपल सरिस, प्रियके अधर रसाल ।
तेहिते रस धीरे लियो, मैं संगमके काल ॥
तनकोहू जो तू छुऐ, अधर अरे अज्ञान ! ।
कमलनालके उदर तोहिं, बन्द करहुं इस आन ॥

माढव्य–ऐसे कठिन दण्डसे क्यों न डरेगा ! (हँसकर आपही आप) यह तो उन्मत्त होगया है मैं भी इनके संगसे ऐसीही बातें कहनेलगा ।

(प्रकट) हे सखा ! यह चित्र है ।

राजा–कैसा चित्र ?

सानु०–इससमय तो मुझे भी सुध न रही कि, यह चित्र है, फिर राजाको क्या चेत रहेगा ।

राजा–मित्र ! तैंने बुरा किया ।

(पीलू काफिला)

मित्र ! तुम क्यों सुध मोहिं दिवाई ।
मैं दरशनको लेतरह्यो सुख इकटक चित्त लगाई ।
साक्षात ठाढ़ी है मानों मेरे सन्मुख आई ॥
अब रहगई चित्रकी प्यारी कीजे कौन उपाई ।

(आंशू गिरादिये)

सानु०–(आपही आप) पूर्वापरका विरोधी विरहका मार्ग निराला है इसे सब ओर दुःखही दीखता है ।

राजा–मित्र अब यह पलपलका दुःख कैसे सहूं ?

दोहा–नितप्रति कीन्हें जागरन, छूटो स्वप्न मिलाप ।
देखन देत न चित्रको, आंशू आंखन ढाप ॥

सानु०–(आपही आप) शकुन्तलाके तिरस्कारका दुःख तैंने सर्वथा धोदिया । (चतुरिका आई)

चतुरिका--(आकर) महाराजकी जय हो मैं रंगोंका डिब्बा लिये इधर आरही थी ।

राजा-तब क्या हुआ ?

(जैजैवन्ती)

चतुरि०-मिलीं मारगमें रानी वसुमतीजी,
वो डिबिया रंगकी सब वस्तु छीनी ।
ये बोलीं मैंहीं दूंगी इसको जाकर ।

माढव्य-तू बचआई भला कैसे यहांपर ।

चतुरि०-महारानीका तबतक सुघर अंचल,
कँटीले वृक्षमें उरझा सुकोमल ।
तरलका हां लगी उसको छुडाने,
मैं चटपट आगई तुमको सुनाने ॥

राजा-सखा! मानमें गर्वीली रानी वसुमती आती है, तू इस चित्रको छिपारख ।

माढव्य-यही कहो कि मुझे छिपाले (यह कह चित्रको लेकर उठा) जब श्रीमान् रनिवासरूप कालकूटसे छूटै तो मुझे मेघप्रतिच्छन्दभवनसे बुलालें (बड़े वेगसे गया)

सानुमती-(आपही आप) दूसरीमें आसक्तहृदय होकरभी राजा पहली प्रीतिका निर्वाह करता है, परन्तु विदित होता है कि, पहलेकी अपेक्षा अब इस रानीमें राजाका थोडा अनुराग है ।

(हाथमें पत्र लिये प्रतिहारीका प्रवेश)

प्रतिहा०--महाराजकी जयहो ।

राजा--प्रतिहारी! तैंने मार्गमें महारानी वसुमतीको तो नहीं देखा ?

प्रति०--हां स्वामिन् ! मिली तो थीं, पर मेरे हाथमें पत्र देखकर पीछे लौटगई ।

राजा-रानी समयको जानती है मेरे काममें विघ्न करनेकी इच्छा नहीं करती ।

प्रतिहारी--महाराज! मंत्रीने यह विनय की है कि आज भंडारमें बहुत द्रव्य आनेके कारण उसकी गणनासे अवकाश न मिला, इस कारण नगरका केवल एकही कार्य हुआ है, सो इस पत्रमें लिखा है श्रीमान् देखलें।

राजा--ला, पत्रिका दिखा (प्रतिहारीने चिट्ठी दी)

राजा--(बाँचता है) समुद्रमें नाव लेजाकर व्यवहार करनेवाला धनमित्रनाम सेठ नौका डूबनेसे मृतक हो गया, उसके कोई सन्तान नहीं है, क्या उसका धन राजकोषमें लिया जाय? (शोकसे) हाय! अपुत्र होना बडे दुःखकी बात है परन्तु जिसके इतना धन था उसके स्त्री भी बहुत होंगी, इससे पहले यह जानना चाहिये कि, उन नारियोंमें कोई गर्भवती है कि, नहीं।

प्रति०--हे देव! सुना है कि अयोध्याके सेठकी बेटी जो उसकी स्त्री है उसके इन दिनों पुंसवनसंस्कार हुआ था।

राजा--जाओ मंत्रीसे कहदो गर्भका बालक पिताके धनका अधिकारी है।

प्रतिहा०--जो आज्ञा (जाता है)

राजा--ठहरो तौ।

प्रतिहा० (फिर लौटकर आया)

राजा--इससे क्या ? उसके सन्तान हो या न हो।

(राग प्रभाती)

नगर ढंढोरा मेरे वचनसे जाकर दीजे अबहिं फिराई।
पापीजनके बिना हमारी प्रजाके जो कुल समुदाई।
विधिवशहोय वियोग बन्धुके वे अपने सब दुःख मिटाई
उनकी ठौरमोहिंते जानै कहदीजो सब भाँति सुनाई॥

प्रतिहारी--जो आज्ञा यही ढंढोरा होजायगा।

(बाहर जाकर फिर आया)

प्रतिहारी०--योग्यसमयकी वरसाकी समान महाराजकी आज्ञाने नगरमें आनन्द करदिया है।

दुष्यन्त--(गहरी श्वास लेकर) हा ! जिसकुलमें आगेको सन्तान

नहीं होती मूलपुरुषके मृतक होतेही योंही उसकी सम्पत्ति पराये घर चलीजाती है इसीप्रकार मेरे पीछेभी पुरुवंशकी राज लक्ष्मी अकालमें बोई भूमिके समान रहजायगी।

प्रतिहारी-ऐसा अमंगल कभी न हो।

राजा-धिक्कार है मुझे जो मैंने उपस्थितहुए सुखका तिरस्कार किया।

सानुम०-(आपही आप) सखीको हृदयमें करकेही इसने यह अपनी निन्दा की है, इस में कछ सन्देह नहीं।

(देश)

राजा-मैंने प्यारी पत्नी त्यागी विना विचार।
निजकुलकी कल्याणवर्द्धिनी, गर्भवती सुकुमार।
जैसे फलके समय कृषक कोउ, खेती तजत उदार॥

सानुम०-(आपही आप)
रहि है वंश अटूट तुम्हारो, सबविधि मंगलकार।

चतुरिका-(प्रतिहारीसे)
हाय ! सेठकी दुःखकथाने, दीनों कष्ट अपार॥
महाराजके चितविनोदहित,
करौं शीघ्र उपचार॥
घन प्रतिछन्न भवनसे जाकर,
माढव लाउ पुकार॥

प्रतिहा०-सत्यकही अब मैं जातीहूं,
लाऊं अभी गुहार। (बाहर गई)

राजा-हा ! मेरे संशयमें निशिदिन, होंगे पितर दुखार॥
नृपपीछे विधिसहित पिण्ड तिल कौन देइहै वार।
निशि दिन अपने मनमें राखत, होंगे यही निर्धार॥
अब तो निज आंशू धोनेसे शेषरहे जल जोय।
सुतविहीनके तर्पण जलके पियत होंयगे सोय॥

(शोकसे मूर्च्छित होगया)

चतुरि०–(आश्चर्यसे देखकर) महाराज! सावधान हो।

सानुमती–(आपही आप)

(राग खट)

हाधिक! हाधिक्! महाराजकी,
शोचनीय है दशा अपारी।
जिमि दीपक सन्मुख पट कीन्हे,
दीखन लागत है अँधियारी।
मनमें आवत है यह अबहीं,
मेटदेहु नृपके दुख भारी।
पर मैं सुनी इन्द्रमाताकी,
कही सखीसे बात उचारी।
यज्ञभाग अभिलाषी सुरगण,
बेटी ऐसा करहिं सवारी।
थोडे समय माहिं निजपतिकी,
ह्वै है सबविधि नारि पियारी।
यहि कारण उस शुभ अवसरकी,
चाहिये परखन घडी सुखारी।
इतना करौं जाय निज सखिसे,
कहि सब धीरज देहुँ विचारी।

(उडगई)

(नेपथ्यमें)

(लच्छासाखकी तीसरी चाल)

कोई मुझे बचाओ बडी आपदा मुझपर आई है।

राजा–(चेत होकर और कान लगाकर)

माढव्यसा ये चिल्लाना, कोइ है ह्यां जलदी आना।

प्रतिहारी–(आकर संभ्रमसे)

रक्षा कीजे माढवकी स्वामी दुख अधिकाई है।

राजा-किसने अपमान किया है ?

प्रतिहारी-एक प्रेतने पकडलिया है ।

घनछन्दभवनके ऊपर रखदेता न दिखाई है ॥

राजा-ऐसा मत हो क्या मेरे भी घर भीतर,
रहतेहैं भूतगण आकर ।
अथवा प्रमादवश अपने जिन गति कर्म भुलाई है ॥
फिर वह क्यों जानै ऐसे, प्रजामें कौन है कैसे ॥

(नेपथ्यमें)

हे मित्र! दौड़ियो चलियो, काहे देर लगाई है ॥

राजा--(सुनताहुआ और वेगगतिसे चलताहुआ)

(नेपथ्यमें)

डरना मत मित्र सयाने क्यों नहिं इससे भय माने।
धरकंठ देहको ऐंठत जैसे ईख पिराईहै ॥

राजा--(चारौं ओर देखकर)
कोई धनुष हमारा लाओ,
मत इसमें बार लगावो ।

यवनी-(धनुष लिये आती है)
महाराज धनुष यह हस्तवार[१]युत धरो दुहाई है ॥

(राजाने धनुष बाण लिया)

(नेपथ्यमें)

पकडा है तुझे अब ऐसे, धरता है सिंह मृग जैसे ।
कंठरुधिरकी तेरे प्यास, मुझको अधिकाई है ॥
अब कहां राजा दुष्यन्त, कर्ता है विपतका अन्त ।
वह धनुष बाण धर तुझको, क्यों लेता न बचाई है ॥

---

१ जो धनुषकी प्रत्यञ्चा की फटकारसे भुजाको बचानेको पहुँचेपर धारण किया जाता है उस अस्त्रको हस्तावर कहते हैं ।

राजा-(क्रोधसे)रे शवभक्षी अन्यायी!क्या मुझै चिनोतीलाई
रह खडा मृत्यु तेरी अब पापी धोरे आई है।

(धनुष चढाकर)

राजा--हे वेत्रवत्ती ! सीढियोंका मार्ग दिखलाओ।

प्रति०--महाराज ! यह मार्ग है (सब शीघ्रतासे जाते हैं)

(ऊपर जाकर)

राजा--(चारों ओर देखकर) यहां तो कोई भी नहीं है।

(नेपथ्यमें)

बचाओ महाराज! बचाओ मैं तो तुम्हें देखताहूं तुम मुझे नहीं देखते मैं तो बिलावसे पकड़े चूहेके समान अपने जीवनसे निराश हूं।

राजा-हे तिरस्करिणी विद्याके अभिमानवाले! मेरा अस्त्र तुमको देखलेगा देख अब मैं बाण चढाता हूं।

तुझ पापीको मार जो, द्विजको लेहि उबारि ॥
जैसे हंसा दूधको, जलतैं लेत निकारि ॥

(धनुषपर अस्त्र चढाया)

(माढव्यको छोडकर मातलि आया)

(आसावरी)

मातलि--महाराज इन्द्रने इन बाणोंको असुर बताये हैं।
उनपर यह छोडो बाण वचन सुरराज सुनाये हैं।
मित्रोंके ऊपर नितही सज्जन दया दिखावै हैं।
अपने हितकारीको सब विध हितकर अपनावै हैं।

राजा--(अस्त्र उतारता हुआ) हे महेन्द्र सारथि! मातलि तुम भले आये।

माढव्य०--(आकर) हैं जो मुझेबलिपशुकी समान मारता था यहां उसका सत्कार करते हैं।

मातलि--(हँसकर) महाराज! सुनिये जिस कारण इन्द्रने मुझे तुम्हारे समीप भेजा है।

राजा--कहिये, मैं सुनता हूं।

मातलि--कालनेमिके वंशमें एक दानवोंका समूह वड़ा दुर्जय हो रहा है।

राजा-सत्य है यह मैंने पहलेही नारदजीसे सुनलिया है ।

मातलि-

(पूरियाछंद)

तव सखा इन्द्रके पाहीं, नहिं दानव जीते जाहीं ॥
तिन मारनहित महाराजा, हो अग्र करो सुरकाजा ॥
जेहि सूर्य सकत नहिं टारी, शशि मेटत रात अँध्यारी॥
अब अस्त्र शस्त्र प्रभु बांधो, रथचढ़ जयकारज साधो ॥

दुष्यन्त-देवेन्दने सत्कार देकर मुझपर बडा अनुग्रह किया, पर यह तो कहो कि, तुमने माढव्यपर ऐसा अत्याचार क्यों किया ?

मातलि--यह भी कहता हूं मैंने किसी निमित्तसे आपके मनमें अधिक सन्तापके कारण उदासी देखी इससे क्रोधदिवानेके निमित्त यह कार्य किया ।

जौलों नहिं काठ हिलाई, तौंलो न अगिन धुधकाई ।
जबतक न सर्प खिजियावै, तबतक नहिं फना उठावै ॥
तैसेहि क्षोभ विन आये, जन निज महिमा नहिं पाये ।
इहिकारण मित्र सतायो, तुम्हरे मन रोष बढ़ायो ॥

राजा--(हौले माढव्यसे) हे मित्र! सुरराजकी आज्ञा उल्लंघन करनेके योग्य नहीं है इससे यह बात समझाकर हमारी ओरसे पिशुनमंत्रीसे कहो।

दोहा-तबलौं निजमतिसों करहु, सकल प्रजा प्रतिपाल।
और काज मेरो लगो, जबलौं चाप विशाल ॥

माढव्य--जो आज्ञा (गया)

मातलि--महाराज ! रथपर चढ़ो ।

(दुष्यन्त रथपर चढता है)

(सब बाहर गये)

छठा अंक समाप्त हुआ ।

अंक–७.

(राजा दुष्यन्त और मातलि रथपर बैठे आकाशसे उतरते हैं)

दुष्यन्त--हे मातले ! इन्द्रकी आज्ञा पालनकरकैभी मैं अपनेको इतने बडे सत्कारके योग्य नहीं समझताहूं, जितना देवराजने मेरा सत्कार किया है ।

मातलि--(हँसकर) महाराज ! दोनोंकोही यह संकोच मानताहूं ।

दोहा--हेनृप तुमने इन्द्रको, कियो बडो उपकार ।
मानतहो तेहिं तुच्छकर, देख इन्द्र सत्कार ॥
लखि तुम्हरी सो बीरता, सोउ चकित हिममाहिं ।
यदपि कियो सन्मान बहु, तदपि गिन्यो कछु नाहिं ॥

राजा--ऐसा मत कहो इन्द्रने बिदा करतेसमय मेरा ऐसा आदर किया कि जितनेकी मुझे आशा न थी, देवताओंके देखते२ मुझे अपने आसन-पर बैठनेको आधा स्थान दिया ।

(चौपाई)

जाकी आश जयन्त लगाये ।
ठाढ़ोरह्यो पास सकुचाये ॥
हरिचन्दनसे चर्चित जोई ।
पारिजातकी माला सोई ॥
सुअन ओर लखि हरि मुसकाई ।
हिये उतार मोहिं पहिराई ॥
यहितैं अधिक कौन सत्कारा ।
देवराज जो कीन्ह हमारा ॥

मातलि--महाराज! देवताओंसे आप किस किस सत्कारके योग्य नहीं हो ।

दोहा०--सुरपुरके द्रोही किये, कण्टक दूर नृपाल ।
अब तुम्हरे शर पूर्वमें, नरहरि नखन कराल ॥

राजा-मुझे इस यशकी प्राप्ति देवराजके प्रभावसेही हुई है ।

दोहा--आज्ञाकारिन हाथसों, बनत बडो जबकाज।
तौ महिमा सो स्वामिकी, समुझि परत सब साज॥
अरुण सकत नहिं दूरिकर, रजनीको अँधियार।
यदि न देत निज सामुहे, आसन सूर्य उदार॥

मातलि--सत्य है (कुछ दूर चलकर) हे महाराज! इस ओर तनक दृष्टिकर स्वर्गतक पहुंचीहुई अपने यशकी महिमाको देखो।

दोहा--अंगराग सुरतियनतैं, रंग बच्यो कछु जोय।
तासों सुरगण लिखत हैं, प्रभुचरित्र तव सोय॥
पत्तनपर सुरवृक्षके मधुरे छन्द बनाय।
लिख लिख राखत प्रेमसों, लखहु नरेश सुभाय॥

राजा--हे मातलि! दानवोंके मारनेके उत्साहमें प्रथमदिन इस ओरसे गमनकरते हुए हमने स्वर्गमार्ग भलीभांतिसे नहीं देखा था, कहो ते इस समय हम वायुके किसमार्गमें चलते हैं।

(जैजैवन्ती)

मातलि--महाराज यह मार्ग वही है।
बहत जहां! नभगंग सुहावन,
ऋषिमण्डल गति वर्त्त रही है।
परि वह पवन पंथ यह पावत,
शक्तियुक्त जेहि ज्योति गहीहै॥
विक्रमरूप ईशके दूजे,
पगसे पांवन ख्याति लही है।
निज रश्मिनसे सबहि घुमावत,
ज्योतिर्गणको बात सही है॥

---

१ पुराणोंके मतसे आकाशके विभागमें सातपवन चलती हैं भुर्लोकका विस्तार सूर्यतक है इसमें आवहपवन चलती है वही अन्तरिक्षमें बहकर मेघ विजली और उल्कापातको प्रगटकर चलती है शेष छःमार्ग स्वर्गमें हैं पहलेमें प्रवहपवन सूर्यको चलाती है, सम्वह चन्द्रमाको घुमाती है उद्वह नक्षत्रोंको घुमाती विवह सातौं ग्रहोंको चलाती, विवह सप्तर्षि और स्वरगंगाको धारणकर चलाती है और प.रिवह ध्रुवको धारण किये है।

राजा--हेमातलि! इसीसे मेरा आत्मा भीतर बाहरकी इन्द्रियोंसहित प्रसन्नताको प्राप्तहुआ है (पहियोंको देखकर) अब हम स्वर्गमें मेघोंके मार्गमें उतर आये।

मातलि--यह महाराजने कैसे जाना ?

(रागझंझौटी)

राजा--देखो यह प्रत्यक्ष लखाई।

अरनमार्गसे निकसि निकसि यह,
चातक पक्षी रहे उड़ाई।
चमकत अंग इन्द्र घोडनके,
विद्युतसे देखहु मनलाई।
भीजरहे सब रथके पहिये,
कहेदेत जलु हमें बुझाई।
जलसे भरे मेघ पथमाहीं,
चलोजात यह रथ सुखदाई।

मातलि--अभी महाराज क्षणभरमें अपने राज्यकी भूमिमें पहुंचते हैं।

राजा--(नीचेको देखकर)वेगसे उतरनेमें मनुष्यलोक आश्चर्यसा दीखता है।

(जैजैवन्ती--प्रभाती)

यह शोभित नरलोक मनोहर ऊपरसे इमिदेत दिखाई।
शैलशिखर यह लगत उठतसे नीचे भूमिहिखसत लखाई।
पातड़केसे रहे रूखजे तिनके कंध लगत निकसाई।
रेखामात्र लखात नदीजे ते अब दीखत हैं अधिकाई॥
भूमण्डल इमि निकट हमारे आयरह्यो देखहु मनलाई।
मानो केहूवीरको फेंको आवत है हमरे समुहाई॥

मातलि--आपने भला देखा (भूमिकी ओर देखकर) अहो! भूमि कैसी मनोहर दीखती है।

राजा--हेमातलि! कहो तो पूर्व और पश्चिम सागरके बीच यह कौनसा पर्वत है जिसमें सन्ध्याके मेघसे अर्गलाकी समान सुनहरी धारा निकलती दीखती है।

मातलि-यह किन्नरोंका हेमकूट नाम पर्वत तपस्याका सिद्धक्षेत्र है ।

दोहा-ब्रह्मा पौत्र मरीच सुत, सुरासुरनके तात ॥
पत्नीसहित प्रजापती, तपत यहां सुखपात ॥

राजा-तौ कल्याण प्राप्त करनेके निमित्त यह समय न चूकना चाहिये ऋषिराजको प्रदक्षिणा करके चलना चाहिये ।

मातलि-यह विचार बहुत श्रेष्ठ है ।

(दोनों उतरते हैं)

राजा-(आश्चर्यसे)

(चौपाई)

पहियन शब्द न पर्यो सुनाई।उठी धूरि नहिं परी लखाई।
उतरत रथने कछु नहिं जानो।अद्भुतरथ प्रभाव हम मानो॥

मातलि-महाराज आपके और इन्द्रके रथमें इतनाही अन्तर है ।

राजा-हे मातलि ! कश्यपजीका आश्रम कहां है ?

मातलि-(हाथसे दिखाकर)

(राग छट)

जहँ वह अचल ठूंठ सम मुनि इक,
रवि सम्मुख लौ रहो लगाई ।
चढि आई आधेतन, बांबी,
सर्पकेंचुली हिय लपटाई ॥
सूखी लतापरी गलमाहीं,
पीडा करत मनहुँ अधिकाई ।
शीशजटामें वन पक्षिनने,
अपने लीन्हे नीड बनाई ।
वही आश्रम कश्यपजीको,
जो सुर नर मुनिके सुखदाई ॥

राजा-ऐसे कठिन तप करनेवालेको प्रणाम है ।

मातलि-(घोडोंकी रास खेंचकर) हे महाराज ! अब हम अदितिके सींचे हुए मन्दार वृक्षोंसे शोभित प्रजापतिके आश्रममें आगये हैं ।

राजा–यह स्थान तो स्वर्गसे भी अधिक शान्तिदायक है, इस समय तो मैं मानो अमृतकुण्डमें स्नान कर रहा हूं।

मातलि–(रथको रोककर) महाराज अब उतरैं।

राजा–(उतरकर) हे मातलि ! तुम रथको छोड़कर कैसे चलोगे !

मातलि–इसका मैंने यत्न करदिया है, यह यहीं खडा रहेगा, मैं भी उतरता हूं (उतरकर) महाराज ! इस ओरसे आइये (घूमकर) यह महर्षियोंकी तपोवनभूमियें हैं, महाराज इनका दर्शन करैं।

राजा–मैं आश्चर्यसे देखता हूं।

(दोहा)

करत और मुनितप अधिक, जेहि थल पावन आस ॥
इन्द्रियसुख तज तपत तहँ, यह ऋषि मुनिकर वास ॥
कल्पवृक्षवनकी पवन, पीकर राखत प्रान ॥
अवसर भलो मुनीनको, सब विधि मन सुखदान ॥
कनक कमल रजसे सुभग, पीत सलिल सुखदाय।
धर्मक्रिया अभिषेक हित, जहँ नित मिलत सुहाय ॥
रत्नशिलापर बैठकर, साधत मुनि जन ध्यान ॥
यहां अप्सरन निकटहूं, इन्द्रियवशी महान ॥
तहां तपत ह्यां मुनि सकल, हरिसे ध्यान लगाय ॥
अहो ! धन्य मैं धन्य अति, इनके दर्शन पाय ॥

मातलि–सत्पुरुषोंकी अभिलाषा सदा उन्नत रहती है (इधर उधर घूमकर आकाशकी ओर) हे वृद्धशाकल्य ! कहो भगवान् कश्यपजी इससमय क्या कररहे हैं–क्या कहतेहो, कि दक्षसुताने जो पति व्रतधर्म पूछाथा वह उनको और ऋषिपत्नियोंको सुनारहे हैं।

राजा–(कान लगाकर) मुनियोंके समीप अवसरसे जाना उचित है।

मातलि–(राजाकी ओर देखकर) महाराज ! तबतक इस अशोकवृक्षकी छायामें ठहरें, जबतक मैं समय देखकर इन्द्रके पितासे तुम्हारे आनेका संदेशा कहूं।

राजा-जैसा तुम्हें भलालगे ।

मातलि-महाराज ! मैं जाकर कार्य करताहूं ।

राजा-(शकुन देखकर)

(परज)

काहे फरकत बांह वृथाहीं ।
प्यारीरूप मनोरथ मेरो, ताकी आश रही कछु नाहीं ।
जब सन्मुख आये कोइ सुखको, करै निरादरदुख इमिपाहीं

(नेपथ्यमें)

अरे ! चपलता मतकरै क्यों अपनी बान नहीं छोड़ता ।

राजा-(कान लगाकर) यह स्थान तो विनयका है, यहां चपलता करनेका किसको निषेध होरहा है(शब्दकी ओर देखकर आश्चर्यसे)अहा! यह बडा पराक्रमी किसका बालक है जिसे दो तपस्विनी रोंकरही हैं।

(चौपाई)

आधो पियो मात थन जाने, सिंहनि सुतको मनहिंनमाने।
गहिकर केश घसीटत ताही, क्रीडाहितको बालक आही।

(सिंहके बच्चेको घसीटता एक बालक आया और दो तपस्विनी उसे बरजतीहुई आईं)

बालक-अरे सिंह तू अपना मुख खोल मैं तेरे दांत गिनूंगा ।

पहली तपस्विनी-

(अंग्रेजी वालशकी धुन)

कहीमान मेरी हेलाल, तज यह चंचलताकी चाल ।
पशू सतावत क्यों अविनीत, हम बालकसी राखैं भीत।
हाय बढे साहस नित तेरा, बडी ढिठाईने तोहिं घेरा ।
इसीसेतौ ह्यांके मुनि जन, तुझे कहैं हैं सर्वदमन ।
मत इसके मुखमें कर डाल, तज यह चंचलताकी चाल॥

राजा-(आपही आप)

इस बालकके लख शुभगात,
औरससुत सम नेह लखात ।

सो कछु कारण परत न जान,
अथवा मैंहूं विन सन्तान ।
तासों उपजत नेह शरीर,
द्वि० तपस्व०-तजै न जो मृगशिशुको वीर ।
दौडेगी सिंहन तत्काल । तज यह० ॥
बालक-(मुसकाकर) सत्यकहोहो वचन सुघर,
मुझे सिंहनीका क्या डर ।
(मुंह चिढ़ाता है)
राजा-यह तेजस्वीकी सन्तान,
दीखत बालक वीर महान ।
ठाढ़ो ऐसे परत लखाय,
जलती अगिनि काठ जिमि च्याय ।
हरि हर इसपर रहैं कृपाल । तज यह० ॥
प्र० तपस्वि०--प्यारे छोड सिंहशिशु नैक,
तुझे खिलौना दूंगी एक ।
बालक-अच्छा लाओ खिलोना अब-(हाथ फैलाता है)
राजा-इस बालकके लक्षण सब ।
चक्रवर्तिसे परत लखाय, अद्भुतता कछु कही न जाय।
है अपूर्व रेखनको जाल । तज यह० ॥
जबहिं पसारयो यानै हाथ, जालगुंथी अंगुरी इक साथ ।
खिलेकमल समपरीदिखाय,प्रातअरुणकछु दियोखिलाय
पृथक् भई नहिं पखुरी जास,ऐसी शोभा करत प्रकाश ।
दोऊ बाहें बनी विशाल । तज यह० ॥

दूसरी०-हे सुव्रता यह बालक बातौंसे न मानेगा जाओ मेरी कुटीसे ऋषि कुमार मार्कण्डेयके खेलनेका एक मृत्तिकाका चित्रितमोर धरा है उसे ले आओ ।

प्र० तप० मैं अभीलिये आतीहूं (गई)

बालक-तबतक मैं इसी सिंहके बच्चेसे खेल करूंगा।

(यह कहकर तापसीकी ओर देखकर हँसता है)

राजा-(आपही आप) इसके खिलानेको मेरा जी कैसा करता है।

(रागकलिंगडा)

मोद देत बालनके खेलन,
खिलखिलात जब कुन्दकली सम,
विकसतदन्तपंक्ति अतिपावन।
विनाबात हँस वचन तोतरे,
बोलत डोलत इत उत छिन छिन।
धाय धाय कर परत गोदमें,
प्यारी बातैं लगत सबहि मन।
अहो! धन्य वे मात पिता अति,
जो इसबालकको करें लालन।
गोद उठाय बालके तनुकी,
धूरिनसे मलीन कर निजतन॥

द्वि०तपस्वि०-अच्छा यह मेरी बातपर तौ कान नहीं धरता (इधर उधर देखकर) ऋषिकुमारोंमेंसे यहां कोई है (राजाको देखकर) हें महानुभाव! तुमहीं यहां आओ, इस बली बालकके हाथसे कृपाकर सिंहके बच्चेको छुडाओ, यह ऐसा इसमें मग्न होरहा है कि इस बालमृगेन्द्रका छुडाना कठिन होरहा है।

राजा-(निकट जाकर और हँसकर) हे महर्षिपुत्र!

(राग खट)

आश्रमके विरुद्ध यह तुमने क्यों सीखे आचरण दुलारे।
पशुरक्षा है धर्म तपस्विन काहे पुरुषन वचन विसारे।
जैसे बालसर्प चन्दन तरु दूषित करत न ज्ञान सम्हारे।
तैसे तुमने कियो तपोवन त्यागो यह अनरीत पियारे॥

द्वि०तपस्वि०-हे महाभाग यह ऋषिकुमार नहीं है,

राजा–सत्य है यह तो इसके आकार और चेष्टाही कहेदेती है । परन्तु तपोवनमें रहनेके कारण मैंने इसको ऋषिकुमार जाना था, (मनकी लालसाके अनुसार बालकका हाथ हाथमें लेकर आपही आप)

(राग देश)

अहा! जनु केहि कुल अंकुर यह बालक।
जाके छुए मोहिं सुख ऐसो,
तेहिं सुख कैसो जो एहि बालक।
निश्चय मात पिता बड़भागी,
जिनके अंग भयो खलशालक॥

तपस्वि०–(दोनोंकी ओर देखकर) बडे आश्चर्यकी बात है ।

राजा–तुमको क्या आश्चर्यहुआ ।

तपस्वि–इस बालककी ओर तुम्हारी उनहार बहुत मिलती है, इससे मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ है कि तुम्हें बिना जाने भी इसने तुम्हारी बात मानली ।

राजा–(बालकको खिलाताहुआ) यदि यह ऋषिकुमार नहीं तो किसके वंशका है ?

तापसी--यह पुरुवंशी है ।

राजा–(आपहीआप) यह हमारे वंशका किसप्रकार है, और इस भगवतीने इसीसे मेरी इसकी उनहार मिलती बताई है, हां पुरुवंशियोंमें यह रीति तो अवश्य है कि–

(चौपाई)

प्रथम भूमिपालनके कारन, करत गृहस्थआश्रम धारन।
तहँ सबविधि कर भोग विलासा, पाछेवनतरुतरकर वासा
तहँ इन्द्रिय संयम कर भारी, जपहिं निरन्तर ब्रह्म विचारी

(प्रगट)

पर यह थल ऐसो है नाहीं, बलसे मर आसकत न छांहीं ।

दूसरीत०--यह तुमने सत्य कहा एक अप्सराकी पुत्री होनेके कारण इसकी माताने देवताओंके गुरुके तपोवनमें इस बालकको जन्मा है ।

राजा--(आपही आप) अहो ! यह दूसरी बात आशाकी प्रगट-करनेवाली हुई (प्रगट) तो वह भाग्यवान् इसकी माता किस राज-र्षिकी स्त्री है ?

द्वि०तप०--जिसने अपनी धर्मपत्नीको बिना अपराध त्यागदिया है उसका नाम कौन लेगा ।

राजा--(आपही आप) यह कथा तौ मुझीपर लगती है, अच्छा इस बालककी माताका नाम तो पूछूं (सोचकर) अथवा पराई स्त्रीका वृत्तान्त पूछना अनरीति है ।

(तपस्विनी मिट्टीका मोर लिये हुए आई)

प्र०तपस्वि०--हे सर्वदमन! यह शकुन्तलावण्य देख ।

बालक--(बडी लालसासे देखकर) मेरी माता शकुन्तला कहां है ?

दोनोंत०--यह माताका प्रिय नामकी समानतासे वंचित होगया ।

दूसरीत०--वत्स ! मैंने तो यह कहा था कि इस मट्टीके मोरकी सुन्द-रता देख ।

राजा--(आपही आप) क्या इसकी माता शकुन्तला है, अथवा एक नामकी अनेक होती हैं, अथवा मृगतृष्णाके समान मुझे दुःख देनेको यह नाम उच्चारण किया हो ।

बालक--(खिलौनेको लेकर) यह मोर मुझे बहुत अच्छा लगता है ।

प्र०तपस्वि०--(देखकर व्याकुलतासे) हाय! हाय! इस बालककी बांहसे रक्षाबंधन कहां गया ?

राजा--व्याकुल मत हो जब यह सिंहके बच्चेसे खेल रहा था तब इसके हाथसे गंडा गिरगया सो यह पड़ा है (गंडा उठानेको हाथ बढाया)

दोनोंत०--है है इस गंडेको छूनामत, अहो ? इसने तो उठाही लिया ।

(दोनों अचंभेसे हृदयपर हाथ धर परस्‌ र देखती हैं)

राजा--तुमने मुझे इसके उठानेका निषेध क्यौं किया ?

द्वि०तपस्वि०--सुनिये महाराज ! यह अपराजिता नाम महौषधि इस बालकके जातकर्मके समय महात्मा मरीचिके पुत्र कश्यपजीने दी थी. इसको यह बालक और इसके माता पिताको छोडकर कोई नहीं उठा सकता ।

राजा--और जो कोई उठाले ?

प्र०त०--तो यह सर्प बनकर उसे डसे ।

राजा--कभी तुमने इसका प्रभाव देखा है ?

दोनों--अनेक वार।

राजा--(प्रसन्न होकर आपही आप) अब मनोरथ पूर्ण होनेसे मैं क्यौं न आनन्द मनाऊं (बालकको आलिंगन करता है)

दूसरीत०--आओ सुव्रता यह सुख समाचार शकुन्तलाको सुनावें, वह बहुत कालसे वियोगके कठिन नेम कर रही है।

(दोनों गईं)

बालक--मुझे छोडो मैं अपनी माके पास जाऊंगा।

राजा--हेपुत्र ! तू मेरे संग चलकर अपनी माताको सुखीकर ।

बालक--मेरे पिता तो दुष्यन्त हैं तुम नहीं हो ।

राजा--(मुसकाकर) यह विवादभी मुझे विश्वास कराता है ।

(एकवेणीधारणकिये शकुन्तला आई)

शकुन्त०--(आपही आप) विकारके अवसरमेंभी सर्वदमनके गंडेने रूप न पलटा यह सुनकर मुझे अपने भाग्यमें आशा नहीं है, अथवा यदि सानुमतीका कथन सत्यहो तो यह संभव है ।

राजा--(शकुन्तलाको देखकर) अहा! यही प्यारी भगवती शकुन्तला है।

(सोहिनी)

अहा! यही मम प्राणपियारी ।
नियम करत बीते बहुते दिन,
दूबर अंग भई सुकुमारी ।
मलिन वसन तनपर तिय पहरे,
शीशजटा इक वेनीधारी ।
अपने शील स्वभाव सतीव्रत,
कर कर सहत विरह दुखभारी ।
मुझ निर्दयी कठोर हिये हित,
रोगिन जोगिन बनी विचारी ।

शकुन्त०-(पछतावेसे विवर्ण मुख राजाको देखकर) यह तो आर्यपुत्रसे नहीं हैं और नहीं तो कौन हैं जिसने रक्षाबन्धन पहरेहुए मेरे बालकको अंग लगाकर दूषितकिया ।

बालक-(दौडताहुआ माताके समीप जाकर) मैया यह कौन पुरुष है जो मुझे पुत्र कहकर गोदमें लेता है ।

राजा--प्यारी! मैंने तुम्हारे संग निष्ठुरता तौ की परन्तु इसका फल अच्छाहुआ जिससे मैं देखताहूं कि तैंने मुझे पहचानलिया ।

शकुन्तला-(आपही आप) हे मन धीरजधर, धीरजधर, अब मुझे विश्वास हुआ कि दैवने ईर्षा त्यागकर मुझपै दयाकी, यह निश्चय मेरेही स्वामी हैं ।

राजा-हेप्यारी !

(सोहनी)

सुधिआई मिटगयो सकल भ्रम मेरो भारी ।
सुफलभये ममकाज धन्य यह घड़ी पियारी ।
सन्मुख भेंटी आज प्रिया जीवनधन मेरी ।
ग्रहणहोत जब दूर मिटत तेहिसकल अँधेरी ।
तबहिं चन्द्र ढिग आयके करत रोहिनी योग ।
तैसेहि पाई मैं प्रिया मिटे सकल दुखयोग ॥

(धन्य दिन आजको)

शकुन्तला--महाराजकी (इतना कहकर गद्गदवाणी होती है आंसू गिरते हैं)

राजा-प्यारी लीन्हो जान शब्द तुम जय उच्चारी ।
रुकी कंठमें आय प्रेमवश वैन तिहारी ।
पर अब शंका नांहिं सबहि विधि मैं जय पाई ।
सुमुखि! तुम्हारे दरश भयो अतिसरस सुहाई ।
अंगरागसे रहित यह अधर तिहारे लाल ।
दर्शन कर मनमें भयो मेरे मोद विशाल ।

(धन्य दिन आजको)

बालक-हे माता! यह कौन पुरुष है कहो विचारी।
शकुन्त०-बेटा अपने पूछ भाग्यसे कथा हमारी (आंशु भरलिये)
राजा-(शकुन्तलाके पैरोंमें गिरता है)

मनते प्यारी दूरकरो अपमान हमारो।
वा छिन मेरे हिये रह्यो अज्ञान अपारो।
बहुतनकी यह होत गति तामसवश सुखवार।
फेंकदेत अहिजान जिमि अन्धदिये गलहार

(क्षमाकर दीजिये)

शकुन्त०-उठो प्राणपति! उठो न कुछ अपराध तिहारे।
पूर्वजन्मके पाप उये तिन दिनन हमारे।
शुभकर्मन फल भेट तुम्हें निर्दयी बनायो।
तुम्हरे मनसे दया दूरकर अहित करायो।

(राजा उठता है)

मुझ दुखियाकी सुधि तुम्हैं फिरि किमि भई नरेश।
कहो मुझे समझाय सब, मेटहु कठिन कलेश

(न राखो गोयकर)

राजा-जब हियरेसे सकल विरह दुख जाय पराई।
तब सब कहिहौं प्रिया तोहिं मैं कथा बुझाई।
तेरे अँशुअन बूंद परी जो अधरन आई।
लखि अनदेखी करी हिये अतिशय भ्रमपाई।
सो पछितायो आज मैं प्यारी लेहुँ मिटाय।
पोंछूं इन अँशुआन जो रहे पलकतो छाय

(आंशू पोंछता है निकट मुख किजिये)

२शकुत०-(राजाकी अंगुलीमें मुदरी देखकर)

क्या यह मुदरी वही विपति जेहि मोहिं दिखाई।

राजा-हां प्यारी यहि लखत मोहिं तेरी सुधि आई।

शकुन्त०--स्वामीको परतीत करन हित जब मन आनी।

तब यह दुर्लभ हुई करी अतिशय हित हानी।

राजा--हे प्यारी अब फेरि इसे करमें लीजे धार।

जैसे ऋतु आगमनमें लता फूल गुणवार।

(तुम्हें लागत भली)

शकुन्तला--मुझे इसका विश्वास नहीं रहा तुमही पहने रहो।

(मातलि आया)

मातलि--आज बड़े भाग्यका समय है, कि आपने अपनी धर्मपत्नीको पाया और पुत्रका मुख अवलोकन किया।

राजा--हां, आज मेरा अनिर्वचनीय मनोरथ सफल हुआ, हे मातलि! यह तो कहो कि यह वृत्तान्त इन्द्रको विदित था कि नहीं।

मातलि--(मुसकाकर) देवताओंसे क्या छिपा है, अब आप आइये महानुभाव कश्यपजी आपको दर्शन देंगे!

राजा--प्यारी शकुन्तला पुत्रका हाथ पकडलो तुमको आगे करके महर्षिके दर्शनकी इच्छा करताहूं।

शकुन्तला--महाराजके संग गुरूजनोंके समीप जाते मुझे लाज लगती है

राजा--ऐसे शुभकालमें यह करना उचितही है।

(संग चलते हैं)

(आसनपर बैठे कश्यप और अदिति दिखाईदिये)

कश्यप--(राजाको देखकर) हे दक्षसुता।

(चौपाई)

अग्रगामि तब सुवनसेनको,
सुरगणके अवलम्ब देनको॥
भूपति नृप दुष्यन्त यही है,
एहि धनुको परताप सही है॥

जाको प्रबल चाप शर पाई,
नाममात्र हरि वज्र रहाई ॥

अदिति०--मिमहिमा नृपके अनुरूपा,
कहत स्वामि जेहि सुरगण भूपा ॥

बडाईतो इसके रूपसेही दीखती है ।

मातलि--हे राजन् ! यह देवताओंके माता पिता अपने पुत्रकी समान प्यारकी दृष्टिसे आयुष्मानको देख रहे हैं, इनके समीप चलिये ।

राजा--मातलि--

(चौपाई)

क्या कश्यप अरु अदिति यही हैं,
जिनसे सब जग रचन हुई हैं ।
द्वादश रवि इनहीं जन्माये,
त्रिभुवननाथ इन्द्र पितु गाये ।
इनकी कोख विष्णु भगवाना,
प्रगटे वामन रूप महाना ॥
सुत मरीचि, ब्रह्माके नाती,
इनहिं प्रशंसत ऋषि मुनि जाती ॥

मातलि--हां, यही हैं ।

राजा--(समीप जाकर) इन्द्रका आज्ञाकारी दुष्यन्त तुम दोनों महानुभावोंको प्रणाम करता है ।

कश्यप--पुत्र चिरंजीव होकर पृथ्वीका पालन करो ।

अदिति--बेटा तुम रणमें अजेय हो ।

शकुन्त०--बालक सहित मैं तुम दोनोंके चरणोंमें प्रणाम करती हूं ।

कश्यप--हे पुत्री !

दोहा-सुरनायक सम स्वामि तव,सुत जयन्त सम होय ।
इन्द्राणी सम होय तू,आशिष और न कोय ॥

अदिति--हे बेटी ! तू सदा पतिकी प्यारीहो और यह बालक दीर्घायु होकर दोनोंकुलका आनन्द करनेवालाहो, आओ बैठो ।

(सब प्रजापतिके सन्मुख बैठते हैं)

कश्यप--(एक एकको देखकर) आज बडे भाग्यकी बात है कि-

दोहा-सती नारि सतसुत विमल, तुम नृपमणि भूपाल ।
श्रद्धा धन अरु विधि मनो, मिले धन्य यह काल ॥

राजा--भगवन् ! पहले मनोरथकी सिद्धि और पीछे दर्शन यह आपका अनुग्रह बड़ा अपूर्व है ।

दोहा--प्रथम फूल तब होत फल, मेघ भये जल होय ।
कारण कारज गति यही, यह जानत सब कोय ॥
पै अद्भुत प्रभाव तव, प्रगट लख्यो मैं आय ।
पाछे वरकारज सकल, प्रथमहिं भये सुहाय ॥

मातलि-प्रजापतियोंके अनुग्रहका यही प्रभाव है ।

राजा--

(भैरों)

भगवन् ! विनय करहुँ करजोरी ।
अपनो जान दया करके प्रभु संशय दीजे छोरी ।
यह तुम्हारि दासी ऋषिदुहिता शीलवन्त अति भोरी।
ब्याही मैं गन्धर्वरीतिसे प्रीति न मनमें थोरी ।
पुनि कछुकाल गये पितु परिजन सँगआई मो पोरी ॥
मैं पहिचान सक्यो नहिं ताछिन मोह आयमति वोरी
त्याग कियो परदार जानकर कीन कण्वकी खोरी ॥
पीछे मुद्री लख सुधि आई कण्वसुता तिय मोरी ।
यह वृत्तान्तअचरजसो लागत,रहत मोह मति घोरी ॥

(राग किदारा)

नित मन यही रहत पछितायो ।
जिमि सन्मुख हाथी लख कोई,
कहै कि यह गज नाहिं कहायो ।
निकसि जात तब रहत शंक करि,

पद लखि पुनि प्रतीति मन लायो।
तैसेइ मोमनकी गति ताछिन,
भई प्रिया बहुचेत दिवायो।
त्यागतभयो शंक मन करि करि,
मुद्री लखत चेत मन आयो।
तवकुलको अपराध कियो मैं,
सो कैसे अब जात मिटायो।

कश्यप-हेपुत्र ! तुम इसमें अपने अपराधी होनेकी शंका मतकरो तुममें स्वाभाविक मोह नहीं हुआ था, सुनो।

राजा-मैं सावधान होकर सुनताहूं।

कश्यप-जब मेनकाने अप्सरातीर्थपर जाकर शकुन्तलाको बहुत व्याकुल देखा तो उसको लेकर अदितिके निकट आई, उसीसमय मैं ने ध्यानसे जानलिया था कि. निःसन्देह दुर्वासाके शापके कारणसेही राजाने अपनी तपस्विनी सहधर्मिणीको त्यागा है, और उस शापकी अवधि मुद्रीके देखनेहीतक थी.।

राजा-(वेगसे) मैं धर्मपत्नीत्यागके अपवादसे छुटगया।

शकुन्त०-(आपही आप) भाग्यकी बात है कि, पतिने मुझे जानबूझकर नहीं त्यागा, परन्तु मुझे यह सुधि नहीं कि, शाप कबहुआ, अथवा विरहसे शून्यहृदय होनेके कारण वह शाप मैंने न जाना, इसीसे मेरी सखियोंने मुझे जतादिया था कि.अपने स्वामीको अंगूठी दिखादेना।

कश्यप-बेटी अब तू कृतार्थ हुई अपने स्वामीका अपराध न समझना।

(रांग कान्हडा)

तेरे पतिने होय शापवश तोहिं न जानकर त्यागी।
सो सब मिटो महाभ्रम भामिनि अब तू भई सभागी।
जिमि मलीन दर्पणके कारण परतन बिम्ब दिखाई।
पुनि तेहि स्वच्छ किये सब दीखत तिमि तू भई सुहाई।

राजा-जो आपने कहा सो सत्य है।

कश्यप-बेटा! जिसको हमने विधिपूर्वक जातकर्मादि संस्कार किये हैं उस शकुन्तलाके उदरसम्भूत इस अपने पुत्रका तुमने अभिनन्दन किया ।

राजा--भगवन्! इससे तो मेरे वंशकी प्रतिष्ठा है ।

कश्यप-तुम निश्चय जानो कि यह बालक चक्रवर्ती होगा ।

कहूं सकै गति नहीं जासुकी चढ ऐसे रथमाहीं ।
वीरपुत्र तव सातदीप जे सागर पार कहाहीं ।
तिनको जीत प्रयासविनाही अपने वश करि लावै ।
सर्वदमन जिमि यहां दुष्टपशु दमनहेतु कललावै ।
तैसेहि प्रजा भरण पोषण कर भरत नाम यह पावै ।
युग युग कीरति चलै पावनी आगमहू गुणगावै ॥

राजा--जिसके आपने संस्कार किये हैं उससे सब प्रकारकी मुझे आशा है।

अदिति-हे भगवन्! आज इस बेटीके मनोरथ सिद्धहुए, इससे इसके पिता कण्वकोभी यह समाचार पहुँचाना उचित है, और पुत्रीको प्यार करनेवाली इसकी मा मेनका तो मेरेही निकट है वह सब जानतीही है ।

शकुन्त०(आपही आप) भगवतीने तो मेरे मनबीती बात कही ।

कश्यप-तपके बलसे महर्षि कण्व सब वृत्तान्त जानते हैं ।

राजा-इसीसे मुनिने मुझपर क्रोध न किया ।

कश्यप--तथापि हमे यह प्रियसमाचार उनके निकट भेजना चाहिये कोई यहां है ?

(एक चेला आया)

शिष्य--भगवन्! क्या आज्ञा है

कश्यप-गालव! अभी तुम आकाशमार्गसे जाकर मेरी ओरसे महर्षि कण्वसे यह प्रियसम्वाद कहना कि, शाप निवृत्त होनेसे दुष्यन्तने पुत्रवती शकुन्तलाको पहँचानकर अंगीकार करलिया ।

शिष्य--जो आज्ञा (गया)

कश्यप--हे पुत्र! तुम भी अब अपनी स्त्री और पुत्रके सहित अपने मित्र इन्द्रके रथपर बैठकर अपनी राजधानीको पधारो ।

राजा--जो आज्ञा ।

कश्यप--और हम तुम्हारा क्या प्रिय करैं ?

"तुम्हरे सब राज्य माहिं, प्रजा सुख पावैं ॥
बरसे नित इन्द्र मेंह, ठानै मख विप्र नेह।
मंगल सब गेह गेह, सुर मुनि मनभावैं ॥
साधै इहि विधि सुकाज, सुरनर मिल तव सुराज।
सोजुग तुहि महाराज-पद लखि गुणगावैं ॥

राजा-- अपनी सामर्थ पाय, करिहौं सब हेतु पाय।
हमपर नित प्रेमभाय, राखो शिरनावैं ॥
मनकी अभिलाष पूरि, पाई तव कृपा भूरि।
होगये दुखद्वन्द्व दूरि, नित तव पद ध्यावैं ॥

कश्यप--अब और क्या आशीर्वाद दें"

दुष्यन्त--इससे अधिक और क्या प्रिय होगा और जो आप पूंछतेही हैं तो भरतका यह वाक्य पूरा हो।

(छप्पै)

राजा अपनी प्रजाहेत नित करहिं सुकाजै।
वेदनिरत द्विज नित्त सरस्वती पूजन साजै।
पार्वतीपति शंभु नील लोहित सुखदाई।
जन्म मरणसे मोहिं छुटावैं करैं सहाई।
धर्म प्रेममय वरध्वजा भारतमें फहरत रहै।
ज्वालाप्रसादकी कृती यह सज्जन जिय आदर लहै ॥

कश्यप--तथास्तु।

(सब बाहरजाते हैं)

इति सप्तमोऽङ्कः समाप्त हुआ।

पण्डित ज्वालाप्रसादमिश्रकृत अभिज्ञानशाकुन्तलनामनाटक का गद्यपद्यात्मक अनुवाद पूर्णहुआ।

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, खेतवाडी--बंबई.

क्रय्यपुस्तकें—(नाटकग्रंथाः)

नाम.	की. रु. आ.	ट.म.रु.आ.
५९१ अभिज्ञानशाकुन्तलनाटक सटीक *	१-४	०-२
५९२ रत्नावलीनाटक मूल सटिप्पण..........	०-६	०-१
५९३ रत्नावली भा०टी०(टीकारचना मनहरण)	०-१०	०-१
५९४ हनुमन्नाटक सटीक जिल्द............	१-०	०-२

नाटक भाषा ।

५९५ शकुन्तला नाटक भाषा गद्य पद्य पं०ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत........................	०-१२	०-१
५९६ हनुमन्नाटक रामगीत भाषा—कविहृदयरामकृत अति ललित सवैया कवित्तादि छन्दबद्धमें परमोत्तम है	१-४	०-४
५९७ प्रह्लादनाटकलालाश्रीनिवासदासप्रणीत...	०-६	०-१
५९८ माधवानलकामकंदलानाटक—ऐसाप्रीतिप्रवाह ग्रंथ देखनेहीके योग्य है लालाशालिग्राम वैश्यकृत........................	०-१२	०-२
५९९ मोरध्वज नाटक—रौद्र, वीर, सत्य और भक्तिमार्गी करुणादि रससे परिपूर्ण भाषा लालाशालिग्राम कृत	०-८	०-१
६०० सीतास्वयंवर नाटक [अर्थात् धनुषयज्ञ] यह (धनुषयज्ञकरने वालोंको अतीवउपयोगीहै.)	०-१०	०-१॥
६०१ द्रौपदीवस्त्रहरण अर्थात् पांडववनगमन नाटक	०-८	०-१
६०२ वेणीसंहारनाटक भाषा—करुणा हास्य और शांत व रौद्र रससे परिपूर्ण अत्युत्तम पण्डित ज्वालाप्रसादजीकृत	०-१०	०-१॥
६०३ विवाहिताविलापनाटक भाषा	०-४	०-॥
६०४ आनंदोद्भव नाटक—(प्रथम भाग १.)	०-१	०-॥
६०५ शीलसावित्रीनाटक (सतीत्वप्रभाव)	०-८	०-१
६०६ सीतावनवास नाटक (गद्यपद्य)........	०-६	०-१

नाम.	की.रु.आ.	ट.म.रु.आ.
६३१ अजीबलाश (देखो)	०-४	०-॥
६३२ वीरनारायण (ऐतिहासिक उपन्यास)	०-१॥	०-॥
६३३ दो बहन	०-१२	०-१
६३४ हीरेका मोल	०-४	०-॥
६३५ दयानन्दजीका जीवनचरित्र	०-८	०-१

भाषा-काव्य।

नाम.	की.रु.आ.	ट.म.रु.आ.
९४५ रामरसायन रामायन-रसिकबिहारीकृत	४-०	०-१२
९४६ रसिकप्रिया सटीक	१-४	०-३
९४७ रामचंद्रिका सटीक कवि केशवदास प्रणीत	२-०	०-३
९४८ काव्यनिर्णयभाषा छन्दबद्ध [भिखारीदासकृत] मनहरण छन्दोंमें कठिन (अलंकार) वर्णन....	१-४	[illegible]
९४९ जगद्विनोद [पद्माकरकृत नायकाभेद]	०-६	०-१
९५० रसराज [मतिरामकृत नायकाभेद]	०-६	०-१
९५१ ब्रजविलास बड़ा मोटेअक्षरका टिप्पणीसहित	४-०	१-०
९५२ ब्रजविलास मध्यमअक्षर टिप्पणी सहित विलायती जिल्द ग्लेज	२-०	०-८
९५३ तथा रफ् कागजका	१-८	०-६
९५४ ब्रजविलास छोटा अक्षर ग्लेज	१-०	०-२
९५५ " " रफ	०-१२	०-२
९५६ ब्रजचरित्र (श्रीराधाकृष्णजीकी सर्वलीला सुगम दोहा चौबोलोंमें वर्णितहैं)	३-०	०-६
९५७ प्रेमसागर टाईपका बडा ग्लेज कागजका	१-८	०-४
९५८ प्रेमसागर टाईपका बड़ा रफ्	१-४	०-४
९५९ भक्तमाला रामरसिकावली बड़ी, रीवाँधिपति महाराज रघुराजसिंहकृत अत्युत्तम छन्दबद्ध जिसमें चारों युगोंके भक्तोंकी भिन्न २ कथा हैं और द्वितीयावृत्ति उत्तर चरित्र समेत अत्युत्तम नई छपी है	४-०	०-१२

	नाम.	की.रु.आ.	ट.म.रु.आ.
९७८	सूर्यपुराणादि २२५ रत्न अतिउत्तमकागज और जिल्दबँधा	०–८	०–२
९७९	सूर्यपुराणादि २२५ रत्न रफ़	०–६	०–२
९८०	ज्ञानमाला	०–२	०–॥
९८१	मंगलदीपिका अर्थात् शाखोच्चार	०–१॥	०–॥
९८२	दंपतिवाक्यविलास–जिसमें सब देशांतर की यात्रा और धंधेके सुखको पुरुषने मंडन और स्त्रीने खंडन किया है दोहा कवित्तोंमें (सुभाषित)	०–१२	०–१॥
९८३	रसतरंग ज्ञानभक्तिमार्गी अजब रँगीले पद्य कृष्णगढ़ महाराज प्रणीत...............	०–८	०–१
९८४	दादूरामोदय संस्कृत–दादू पंथी साधुओंको	०–१०	०–१
९८५	श्यामकामकेलि	०–४	०–॥
९८६	परमेश्वरशतक	०–६	०–१
९८७	भक्तिप्रबोध	०–२	०–॥
९८८	भावपंचाशिका कविवृंदजीकृत...............	०–२	०–॥
९८९	प्रेमशतक	०–४	०–॥
९९०	मदनमुखचपेटिका भाषाटीका...............	०–४	०–॥
९९१	प्रेमवाटिका भाषा (रोचक भजन)	०–२	०–॥
९९२	हनुमत्पताका छन्दबद्ध (वीररसके रोचककवित्त)	०–३	०–॥
९९३	नामप्रताप छन्दबद्ध (श्रीरामनाम माहात्म्य)	०–१॥	०–॥
९९४	शृंगारांकुर भाषा–छन्दबद्ध (रसकाव्य)	०–२	०–॥
९९५	जगन्नाथशतक–इसमें रघुराजसिंह रीवाँधिपतिके बनायेहुये १०० कवित्त विनयके हैं............	०–३	०–॥
९९६	नैषधकाव्य मनहरण छन्दोंमें राजा नल दमयन्तीका सम्पूर्ण उदाहरणों समेत चरित्र	१–०	०–२
९९७	सुन्दरीतिलक (शृंगाररसके चुहचुहाते हुए कवित्त भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी संगृहीत)	०–६	०–॥

नाम.	की.रु.आ.	ट.म.रु.आ.
१०४३ कलियुगाचार्य्यस्तोत्र	०-१	०-॥
१०४४ रसरंगप्रकाश (इसमें अच्छे २ कवियोंके मनभावने पदसंग्रह कियेगये हैं	०-४	०-॥
१०४५ विराटपर्व नेपाली भाषा	०-४	०-॥
१०४६ कान्यकुब्ज वंशावली	०-६	०-१
१०४७ ब्रजरसकवित्तावली (श्रीराधाकृष्णकी लीला ब्रजमहिमा. प्रियादासशुक्लकृत)	०-३	०-॥
१०४८ भक्तिज्ञानानन्दामृतवर्षिणी (भक्ति-ज्ञानका प्रतिपादन सौ कुंडलियोंमें प्रियादास शुक्लजी रचित)	०-३	०-॥
१०४९ साम्प्रतसमयानुसार मानवीकर्त्तव्यकर्मधर्म	०-३	०-॥
१०५० कल्याणकल्पद्रुम (रोचकछन्दबद्ध वेदान्त-मार्गमें सूक्ष्मरामायण)	०-४	०-॥
१०५१ अग्रवालोंकी उत्पत्ति (अग्रवालभाइयोंको आधआनेका टिकट भेजनेसे बिना मूल्य दी जायगी)	-०-	०-०
१०५२ वैश्यकुलभूषण-"इतिहासकल्पद्रुम" माहेश्वरी कुल शुद्धदर्पण और साढी बारह व चौरासी न्यातका वर्णन	१-८	०-॥
१०५३ जैनव्रतकथा नवरत्न भाषा (चौपाईबद्ध)	०-६०	०-॥
१०५४ ज्ञानानन्दरत्नाकर (जैनियोंके उत्तम भजन)	०-६	०-॥

संपूर्ण पुस्तकोंका "**बडासूचीपत्र**" अलगहै मँगालीजिये.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस, खेतवाडी-बंबई.